परमहंस बाबा प्रीतमदास

विरचित

इस पुस्तक में अवतार के लक्षण, [illegible] संसार में आने का उद्देश्य, अवतार का असली स्वरूप, अवतारों के भेद और अवतार से संसार को लाभ आदि विषयों का वर्णन है।

प्रकाशक

आनन्दीलाल आर. ई. आई.

दयालबाग

आगरा।

प्रथमबार १००० | मूल्य १) सन् १९२१

सत्यव्रत शर्मा द्वारा शान्ति प्रेस, शीतलागली आगरा में मुद्रित।

प्रस्तावना

प्रिय पाठकों से सविनय निवेदन है कि इस अवतार-बोध पुस्तक के पाठ करते वक्त नीचे लिखी हुई बातों पर अवश्य निज दृष्टिपात करें। उनमें से एक तो यह है कि इस पुस्तक की भूमिका पहले जरूर पढ़ें क्योंकि ग्रन्थ-रचियता ने भूमिका को इस ग्रन्थ का सूचीपत्र रूप से ही बनाया है। मज़मूनों व पृष्ठों के अंक नहीं दिये लेकिन नमूने के तौर पर छोटे पैमाने से सभी ग्रन्थ का आशय भूमिका ही में वर्णन कर दिया है और अन्य भी दो चार बातें जो ग्रन्थ में नहीं लिखी गई इस भूमिका में ज्यादा ही बयान की हैं। इस वास्ते भूमिका को पहले जरूर ही पढ़ना चाहिये और दूसरी बात यह है कि इस पुस्तक के पाठ करते वक्त निगाह ग्रन्थ रचियता की नीयत पर और उसके भावों पर ही रखनी चाहिये, कविता व भाषा की त्रुटियों को ख़्याल में न लाना चाहिये क्योंकि गु० जी की इस कड़ी मुताबिक़ "भाव भेद रस भेद अपारा। कवित्त दोष गुण विविध प्रकारा।" हरएक इन्सान चाहे वह कैसा ही विद्वान् पुरुष हो, बिल्कुल ही ग़लती से रहित नहीं हो सकता। और यह साफ़ ज़ाहिर है कि कोई बात या कविता चाहे जैसे महान् पुरुष की बनाई हो मगर पढ़ने वाले अपने अपने अन्दर के ऊँच नीच भावों के रंग उस पर ज़रूर ही चढ़ा देते हैं। और उनको वह वैसी ही दरसती हैं। इस

वास्ते हाथ जोड़ कर पाठकगणों से मेरी प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ के इबारत की त्रुटियों की तरफ़ निगाह न करें किन्तु भाव और बोध होने से ही संतुष्ट रहें। मैं कोई बड़ा भारी विद्वान् नहीं हूँ बल्कि यह सब रचना गुरु महाराज की दया का ही फल समझना चाहिये। बाद को तीसरी बात यह है कि इस ग्रन्थ के पूरे तौर से बनने व अवाम की नज़रों के सामने पहुँचने में प्रेमी मित्र मुंशी बालकृष्ण जी, बाबा आनन्दीलालजी व पुजारी नाथूरामजी ने जो अपनी अपनी प्रेम प्रीति के अनुसार सब तरह से सहायता की है उसका मैं बहुत कुछ ऐहसानमन्द हूँ और सच्चे मालिक व सच्चे गुरु जी से प्रार्थना है कि इसके एवज़ में हे प्रभो! आप इन लोगों के ऊपर ज़रूर अपनी अतीव दया मेहर फ़रमाइये। और पाठक गण भी ऐसे शुभ काम का बार बार धन्यवाद करें और मुझे भी आशीर्वाद दें कि मालिक ने इस काम का औज़ार बना मुझसे निज कृपापूर्वक पूरा कराया सो इस दया के एवज़ में शुकरगुज़ारी लिये हुए मेरी ज़बान पर अब यही दोहा आरहा है—

दोहा

हे प्रीतम प्यारे पिताजी, हे प्रणत पाल समरत्थ।
धरो दास ग़रीबा बालके सिर मेहर दया का हत्थ॥

—लेखक।

इस अवतार-बोध ग्रंथ रचने की खास ग़रज़ प्रिय पाठकों को निज अन्दर में यह समझ लेनी चाहिये कि यद्यपि इस भारत देश में हिन्दू भाइयों की बड़ी संख्या पिछले राम कृष्णादि सगुण अवतारों के पक्षपातियों की पहिले से ही चली आती है मगर उन प्राचीन अवतारों की असलियत को समझने वालों और दर्याफ़्त करने वालों के दर्शन बहुत तलाश करने पर भले ही कहीं मुश्किल से नसीब हों नहीं तो ज्यादातर लोग पुराने शास्त्र पुराणों से सगुण अवतारों की बीती हुई कथाएँ पढ़ पढ़ या सुन सुन कर ही अपने को सगुणोपासक मानते हुए या तो अवतार धारण करने वाले उस अव्यक्त निर्गुण निराकार ब्रह्म के पक्षपाती (उसे यहाँ पर व्यापक मान) बन रहे हैं या उन प्राचीन अवतारों के शरीर की नक़ल उतारी हुई इन धातु काष्ठ पत्थर की मूर्त्तियों को ही बहुत से लोग आजकल सगुण अवतार मान बैठे हैं यानी इन मूर्त्तियों को राम कृष्णादि कल्पना करके इन्हीं से अपनी वह मुरादें पूरी कराना चाहते हैं जो कि उन असली अवतारों से उनके भक्तों को उस वक़्त में हासिल होती रही थीं और इस उपरोक्त जाहिरी ज्ञान को ही पर्याप्त ज्ञान

हठ के साथ साथ सच्चा समझ रहे हैं। ऐसे सगुण उपासकों को ही सलाह देते हुए इस पुस्तक में पहिले शुरू में यह बयान किया गया है कि आप लोगों की तो क्या चलाई पुराने ज़माने में भी उन सच्चे अवतारों की परख पहिचान आसान न थी यानी त्रेता द्वापरादि युग में जब कि सगुण अवतार इस पृथ्वी पर मनुष्य-रूप से मौजूद थे, उनके प्रेमी भक्तों को भी साक्षात दर्शन करते व दिन रात संग साथ में रहते हुए भी असली परख पहिचान न हुई। इस बात के सबूत में ख़ास कृष्ण महाराज के गीता के दशम् अध्याय का दूसरा श्लोक वहाँ पर लिख कर यह साबित किया है कि यह मामला ऐसा नहीं है जैसा कि वे आज कल के सगुणोपासक समझ रहे हैं क्योंकि कृष्ण महाराज ने फ़रमाया है—"बग़ैर मेरी दया मेहर के मेरे असली सगुण और निर्गुण स्वरूप को न देवताओं के समूह जान सकते हैं और न ऋषि मुनि ही मुझे ठीक ठीक पहिचान सकते हैं।" तब मनुष्यों की तो क्या गूदड़ी है कि इस मामले को कुछ भी अपनी तुच्छ बुद्धि से ठीक ठीक जांच परख कर सकें। इसके अलावा गुसाईं तुलसीदास जी के रामायण के उत्तरकाण्ड का एक दोहा पेश करके भी यही बात वहाँ पर दिखाई है कि अगर कोई अधिकारी मनुष्य चाहे तो विद्यावान् गुरुओं की मदद से निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप को निज बुद्धि से सुन समझ सकता है मगर सगुण अवतारों की असलियत को जान लेना उसके बस का मामला क़तई नहीं है। इसका सबब वहाँ पर गुसाईं जी के दोहे की दूसरी कड़ी के उत्तर भाग से सुगम अगम चरित्रों को सूचित कराते हुए यह

बयान किया है कि अवतारी महापुरुष जाग्रतादि तीनों अवस्थाओं के पार तुरिया व तुरियातीत दशा में हमेशा व हर वक्त बर्तते रहते हैं—लेकिन बाहर से देखने वालों को साधारण मनुष्य ही अन्य मनुष्यों की सी मामूली क्रियाएँ करते हुए दिखाई देते हैं। इस तरह की भूल भुलइयों में (हम लोगों की तो क्या चलाई है) प्राचीन काल के बड़े बड़े ऋषिमुनि भी अवतारिक ज़माने में भी भ्रमित होते रहे हैं। इसी सिलसिले में रामायण से सीताहरण होने पर श्रीरामचन्द्र जी के हालत की उपमा देते हुए लक्ष्मणजी का दृष्टान्त पेश कर यह दिखाया है कि शेषावतार व महाबुद्धिमान होने पर और दिन रात उन अवतरित श्रीरामचन्द्र जी के संग साथ में रहने पर भी उनको अपने प्रिय इष्टदेव श्रीरामचन्द्र जी की असल हालत का निज बुद्धि से कुछ भी ठीक ठीक पता नहीं चला है। इसके अलावा दो तरह के सुगम अगम चरित्रों का हाल बयान करते हुए योगी और अवतरित महापुरुषों की पारस्परिक सादृश्य और फ़र्क़ भी वहाँ पर बयान किया है। बाद को प्राचीन अवतारों के, शास्त्रों में लिखे हुए लक्षणों को आजकल के लोगों की परख पहिचान का अयुक्त ज़रिया दिखाते हुए उनके अन्दर अनन्त शक्तियों का बयान किया है और जिज्ञासु लोगों को वहाँ पर यह सलाह दी है कि वह इस परख पहिचान के झमेले में न पड़ें किन्तु अपने निजात्म-कल्याण पर ही दृष्टि रक्खें। इस बात के पीछे अगम चरित्रों के बयान में उन महापुरुषों के विराट रूप को मिसाल में लेते हुए अर्जुनादि भक्तों को उस रूप के दर्शन होने की उपमा से यह बात दिखाई है कि बग़ैर अनन्य

प्रमाभक्ति के उन अवतारों के उस अगम चरित्र रूप विराट् स्वरूप को कोई ऋषि, मुनि, देवता और मनुष्य वेदाध्ययन व तप आदि साधनों से हर्गिज़ भी नहीं देख सकता और अन्य कोई तपस्वी और योगी भी अपनी सामर्थ्य से इस रूप को हर्गिज़ नहीं दिखा सकता है। इसके अतिरिक्त महापुरुषों का अपने तन मन इन्द्रियों से स्वेच्छानुसार काम लेना और यहां के सब सामान में मानुषीय तौर से वर्ताव करके आशा वासना से बिलकुल रहित हो निजी सूत अपने भंडार से हमेशा जोड़े रहना भी अगम चरित्र ही बयान किया है जिसको सिवाय किन्हीं विरले साधन करने वाले योगियों के और कोई पढ़ा लिखा विद्वान् पुरुष व अज्ञानी मामूली जीव हर्गिज़ भी नहीं पा सकता और न समझ ही सकता है और वहां पर उन महापुरुषों का एक असाधारण लक्षण यह भी बयान किया है कि वह अवतारी व्यक्ति अन्य लोगों की स्थूल दृष्टि से चाहे जैसी क्रियाएँ काम क्रोध या पुण्य पापादि युक्त करते हुए मालूम होवें मगर जैसे सब जीव इन जाग्रतादि तीनों अवस्थाओं में निज निज कर्मवश जाते हुए एक दूसरी अवस्था का सारा व्यवहार भूल जाते हैं तैसे ही वह महापुरुष इन तीनों अवस्थाओं की कार्रवाई मामूली जीवों की तरह अहंता ममता से बिलकुल रहित हो करते हुए हमेशा इनके परे की चौथी गति में निजी वर्ताव रखते हैं। इससे इन अवस्थाओं की क्रियाओं का लेप उन्हें क्या लग सकता है? अन्य मामूली इन्सान या पढ़े लिखे विद्वान् या उनके संगी साथियों को इस बात का पता चाहे लग सके या न लग सके

मगर वह सब कुछ करते हुए भी बिल्कुल अकर्त्ता हैं। इस बात के प्रमाण में वहाँ पर गीता के अठारहवें अध्याय का १७वाँ मन्त्र और किसी दूसरे शास्त्र का शेष भगवान्‌कथित श्लोक भी लिखा गया है। बाद में मज़मून को और भी बढ़ा कर वही बात दुबारा पाठकगणों को याद दिलाने की कोशिश की गई है कि उन महापुरुषों की असली परख पहिचान होने में पुराने ज़माने के बड़े बड़े तत्त्ववेत्ता ऋषि मुनि भी अपनी कम लियाक़त ज़ाहिर करते रहे हैं यानी इस मामले में वह भी बहुत कुछ भ्रम सन्देहों में (सुगम अगम चरित्रों की असलियत की तह तक न पहुँचने की वजह से) गिरफ़्तार हो कर अनेक चक्रों में पड़ जाते भये हैं और इसी वजह से अवतारों के समय के बहुत से भक्तों का यह हाल रहा है कि पहिले उनको कुछ प्रीति प्रतीति व श्रद्धा भक्ति हो गई मगर पीछे उन महापुरुषों की सामान्य कार्रवाइयों को देख देख कर बिल्कुल ही उनकी तरफ़ से अश्रद्धा हो जाती भई। इस बात के पुष्ट करने के लिये वहाँ पर प्राचीन काल के बड़े बड़े प्रेमी भक्तों को दृष्टान्त रूप से पेश कर दिखाया गया है और यह सारांश श्रोतागणों के ज़हननशीन कराने के लिये उन पुराने भक्तों की मिसाल से कोशिश की गई है कि जब उन महापुरुषों की निस्बत ऐसे पवित्र समय में अवतारों की मौजूदगी में इन नारद गरुड़ादि सरीखे प्रेमी भक्त और विद्वान् पुरुषों के दिलों में महान् शक व शुबह और भ्रम संदेह पैदा हो गये और इसी वजह से वह प्रीति प्रतीति से डिग कर अश्रद्धा और अप्रीति के घाट पर जब उतर आये तब आजकल के सगुण

उपासक इस मामले में क्या दम भर सकते हैं? इनका सगुण निर्गुण ज्ञान की क्या हैसियत रखता है? इस बात को पाठकगण ही निज अंदर में विचार देखें—क्योंकि आजकल के सगुण भक्त तो पुराने ज़माने के भक्तों से सब तरह से ही हीन व निर्बल यानी पुरुषार्थ रहित कलियुगी विकारों में हरदम गिरफ्तार हैं। तब इनका डींग मारना कि (हम रामोपासक या कृष्ण भक्त और शिव की आराधना करने वाले हैं) क्या कुछ मानी या हैसियत रखता है अर्थात् कुछ नहीं। अगर गौर से देखा जाय तो ये लोग मानो पागलों की भाँति व्यवहार करते ही दिखाई दे रहे हैं। अब इसके आगे इस सारे कथन से अधिकारी जिज्ञासु जनों के दिलों में अवतार-विषयक क़तई ज्ञान न होने की जो शंका पैदा हो सकती है और कुतर्की लोग यहाँ तक के लेख को पढ़ कर इस ग्रन्थ को अवतार-अबोधक ग्रन्थ कह या ठहरा सकते हैं तिनके भ्रम को दूर करने के लिए यहाँ पर यह बात प्रकट कर दिखाई है कि हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि उन महापुरुषों को उस वक्त किसी ने क़तई कुछ पहिचाना ही नहीं किन्तु 'वियोगं योग संज्ञितं' के तौर पर उलटे रूप से इस सारे लेख से हमने तहक़ीक़ात पसंद लोगों को यह बात बोध कराने की इस ग्रन्थ में कोशिश की है कि जो आज कल के तुच्छ बुद्धि वाले मनुष्य महापुरुषों या सच्चे साधु-संतों की पहिले परख पहिचान करके शरण क़बूल करने का निजी इरादा करे बैठे हैं तिनके आँख कानों के सामने ये प्रकट कर दिखाया है कि इस मामले यानी सगुण अवतारों की असलियत जानने में आप लोगों की तो इस वक़्त में हैसियत व

क़ाबिलियत ही क्या है अवतारों के जमाने में पहिले के ऋषि मुनि और प्रेमी भक्त भी उस वक़्त उन महापुरुषों की पूरी पूरी जाँच परख नहीं कर सके हैं बल्कि उन महापुरुषों के व्यावहारिक मानुषीय वर्ताव से धोखा खाकर नाना तरह के भ्रम संदेहों के शिकार बन गये हैं लेकिन इससे यह भी नहीं है कि उन कामिल पुरुषों को उन लोगों ने क़तई कुछ पहिचाना ही नहीं बल्कि उन महापुरुषों की दया मेहर से और अपने अपने संस्कार और परमार्थी सच्ची चाह या इच्छा के हिसाब से उन लोगों ने ज़रूर अपने अपने वक़्त के तारने वाले महात्माओं को परख लिया था और अब भी ऐसा हो सकता है। लाखों प्रेमी जिज्ञासु संतों के सत्संग व दरबार में आजकल मौजूद रहते हुए अपनी अपनी लियाक़त के अनुसार काम चलाऊ परख पहिचान करके अपना परमार्थी भाव बढ़ा रहे हैं लेकिन यह नहीं है कि उन्होंने सच्चे साध-संतों की पूरी पूरी ही जाँच परख करली हो सो क़तई ना मुमकिन है। इस जन्मान् जन्म के अंधे जीव की क्या मजाल है कि उन महान् सुजा-के महापुरुषों की गति का कुछ अनुमान लगा सके सो हर्गिज़ भी नहीं लगा सकता और न महापुरुष ही बग़ैर अधिकार के इन्हें अपनी पूरी असलियत का बोध करा सकते हैं और न इन लोगों को इस झगड़े में पड़ने ही की कुछ ज़रूरत है। इसी वास्ते हमने पहिले इस ग्रंथ में यह प्रसंग चलाया है कि प्राचीन सगुण स्वरूपों का ठीक ठीक ज्ञात करना भी कोई मुँह का निवाला नहीं जिसे हर कोई आसानी से ही खा यानी समझबूझ ले। इसमें असली तौर से उसी वक़्त के सगुणोपासकों की भूल भरमों और सब तरह की सुविधाएँ

रहते हुए परख पहिचान न होने के दृष्टान्त भी पूरे तौर से ग्रन्थान्तरों से प्रसंगानुसार लेकर पेश किये हैं और उन नारदादि सभी प्रेमी भक्तों की मिसालों से जो नतीजे ज़ाहिर होते हैं उनको भी वहाँ लिखा है। इसलिये दुबारह लिखकर काग़ज़ व वक्त यहाँ क्यों बरबाद करें।

प्रिय पाठक गण आगे चल इस पुस्तक ही में प्रति प्रसंगनुसार उन प्राचीन भक्तों के ब्यौरे वार वृत्तान्तों को पढ़ते चलें बस यही ठीक सलाह मालूम देती है।

कुतर्कियों के कथनानुसार यह ग्रन्थ अवतार-अबोधक तब साबित हो जब इसमें उन सगुण अवतारों की हर जगह आदि से अन्त तक सब किसी को पहिले से लेकर इस ज़माने तक अविज्ञता या बिल्कुल अज्ञानता ही सिद्ध कर दिखाई जाय यानी सगुण अवतारों का बोध कभी किसी को होही नहीं सकता जो ऐसा सब जगह इस अवतार-बोध ग्रन्थ में लिखा जाय तो बेशक हर कोई इसे 'अवतार-बोध' के बजाय 'अवतार-अबोधक' ग्रंथ कह सकता है। मगर ऐसा सिद्ध करने का उपाय ग्रंथ रचियता ने कहीं पर ख़याल तक में भी नहीं किया है बल्कि हरएक प्रसंग पर अवतारों के सम्बन्ध में लोगों को गलत समझौती को दूर करके अन्त में उनका पूरा पूरा हाल मय साधारण दृष्टान्तों के जिज्ञासुओं की सुगम जानकारी के वास्ते बयान किया है फिर कोई इसे 'अवतार अबोधक' ग्रंथ कैसे ठहरा सकता है अर्थात् ऐसा किसी का कहना व ख़याल करना बिल्कुल गलत समझना चाहिये। नारद, गरुड़,

जनक, दशरथ और अक्रूर अर्जुनादि भक्तों के वृत्तान्त (सगुण स्वरूप की अज्ञनताई के) बयान करके पीछे जिस निर्गुण सगुण का ब्यौरा आदि से अन्त तक इस 'अवतार-बोध' ग्रंथ में वर्णन किया है उसका भी फिर स्वरूप व भेद आगे निहायत स्पष्ट तरीक़े से (सच्चे सन्तों के बयान किये हुए तरीक़े पर) निरूपण किया है। बाद को सगुण स्वरूप की असलियत समझा के उसके यहाँ आने यानी अवतार धारण करने की ग़रज़ भी बयान की गई है और सगुण अवतार यहाँ रह कर जो कार्रवाई और अपनी पवित्र शिक्षा (सब जीवों के स्वार्थी तथा परमार्थी फ़ायदे को मद्दे नज़र रख कर) फ़रमाते हैं उसका कथन भी संक्षेप से कर दिया है। इसके बाद अपना कार्य करके वह महापुरुष यहाँ से लौट कर जिस पद से यहाँ आये थे उसी में निज शरीर छोड़ जा समाते हैं और फिर वापिस लौट कर हर्गिज़ भी वह यहाँ (किसी भक्त के पीछे गुणानुवाद गाने या उनका भजन-पूजन करने से) नहीं आ सकते यह वार्ता भी वहाँ लिखी गई है क्योंकि एक तो अवतरित महा-पुरुष यहाँ की आशा वासना से तीनों काल में बिल्कुल रहित होते हैं दूसरे उनकी अकाल मृत्यु भी नहीं होती यानी उन्होंने जैसे पहिले निज इच्छा से तन धारण किया था वैसे ही स्वेच्छावश शरीर छोड़ निज धनी से जा मिलते हैं। इससे फिर दुबारा लौट कर (बग़ैर निज धनी की आज्ञा के) हर्गिज़ भी नहीं इस मृत्यु लोक में आ सकते हैं चाहे कोई कैसी ही उनकी मिन्नत मनाया करे यानी विनती प्रार्थना करता रहे। मगर उस स्वरूप के दर्शन फिर नहीं हो सकते। आगे चल कर उन अवतारों के जीवित पवित्र

शरीर की महिमा (उसके अन्दर सगुण धार के मौजूद होने की वजह से) भी बयान की गई है और वहाँ पर यह दिखाया है कि वास्तव में जीवों का सच्चा काम करने वाली तो ब्रह्मांड के धनी उस निर्गुण ब्रह्म रूपी सूर्य से निकल कर किरण रूप जो सगुण चेतन धार अवतारों के शरीर के अन्दर विराजमान है वही है और महिमा भी सबसे ज्यादा उसी की है। लेकिन जिस चोले के अन्दर उसने क़याम किया है उसकी महिमा भी अन्य मामूली जीवों के शरीरों के मुक़ाबिले में ज्यादा से ज्यादा है और ऐसे शरीरों की सेवा, भक्ति, पूजा, प्रतिष्ठा, भाव अदब जितना कुछ किया जाय वह ऐन जायज़ है और कम से कम है मगर यह याद रहे कि अवतारों का सिर्फ वह शरीर ही सगुण अवतार नहीं है और न वह शरीर किसी जीव का सच्चा उद्धार ही कर सकता है। इस महान् कार्य की कर्त्ता तो वह सच्ची सगुण धार ही है। इसके आगे चल कर आजकल जो कोई कोई सगुणोपासक व्यापक ब्रह्म या इन मूर्त्तियों को ही सगुण स्वरूप ख्याल कर रहे हैं उनकी ग़लती भी वहाँ पर इस तरह दूर की गई है कि इस मण्डल में यह व्यापक सामान्य चेतन ही सगुण अवतार है तो किसी ख़ास समय में क्यों प्रकट हुआ और क्यों किसी ख़ास समय तक कार्रवाई करके यहाँ से गुप्त हो गया। यह उपरोक्त बात यहाँ के इस व्यापक चेतन में किसी प्रकार भी नहीं बन सकती, बाद को मूर्त्तियों के सगुण अवतार न होने की बाबत यह बयान किया है कि जब उन सच्चे अवतारों का शरीर ही सच्चा सगुण अवतार नहीं है तब ये जड़ प्रतिमायें तो उसके मुक़ाबिले में कोई चीज़ नहीं यानी

इनकी तो कुछ भी हैसियत नहीं है। इससे ये कब उस रूप से पूजी जा सकती हैं और अपनी भावना से भी इन में हम लोग पिछले सगुण अवतारों की कल्पना करके असली फ़ायदा प्राप्त नहीं कर सकते। इस बात का वहाँ पर सविस्तर मय शंका समाधान के बयान किया है और इन मूर्त्तियों के आराधना की बाबत ऋपियों और उनके ग्रन्थों का जो असली अभिप्राय है वह भी बहुत अच्छी तरह निरूपण कर दिया है। ज्यादातर मूर्त्ति-पक्षपाती लोग निजी भावना पर बहुत कुछ जोर देते हैं सो ये लोग यह ख़्याल नहीं करते कि यह भावना भी हम लोगों के अंदर की ही एक निश्चयात्मक वृत्ति है। वह किसी प्रतिमा के वसीले से कुछ काल अभ्यास की रगड़ से यथार्थ होकर वैसा ही फल दे सकती है जैसा कि उस भावना मय वृत्ति के अंदर आकार है। हाँ अगर इन लोगों के सामने की राम कृष्ण नामधारी धातु पत्थर की मूर्त्ति में उन पुराने जमाने के सच्चे राम कृष्ण का ख़्याल आते ही आमद हो जाती या प्राण प्रतिष्ठा की हुई मूर्त्ति की तरफ़ से ही कुछ निज भक्तों के लिये बढ़की चेतनता का व्यवहार जब तब होता रहता तो बेशक यह पक्का निश्चय होजाता और निस्संदेह कहा जा सकता है कि इन मूर्त्तियों के वसीले से जरूर किसी वक्त, निजी भावना से हमारी मुराद बर आ सकती है। सो ये प्रतिमाएँ तो बिल्कुल बेहरकत व बेजान हैं इस वास्ते इनसे तो सिर्फ़ फ़र्ज़ी ख़्याल ही उन बीते हुए रामकृष्णादि का अंदर में पैदा हो सकता है और अगर कोई सच्चा होकर इनके ध्यान में लगे तो चित्त का बिखरापन दूर हो सकता है। ये दोनों प्रयोजन

चाहे जिस जड़ चेतन वस्तु से आप निकाल सकते हैं। इसमें कोई मूर्त्तियों से ही विशेषता नहीं हो सकती। लोग भूल जाते हैं कि संसार में हर जगह निजी भावना से ही काम नहीं चल सकता क्योंकि जो ऐसा ही होता तो स्वार्थी व परमार्थी हर एक इल्म में उस्तादों की क्या जरूरत थी और क्यों वक्त मुनासिब पर यहाँ कलाधारी व संस्कारी महात्मा और अवतारी महापुरुष ही प्रकट होते ? अगर लोगों की निजी भावना से ही हर एक काम निकल आता या वस्तु प्राप्त होजाती तो उपरोक्त महान् व्यक्तियों की यहाँ (इस खाकी और महा मलिन संसार पर) कोई चाह न होती और न उन्हें यहाँ मालिक ही प्रकट करता और उनका यहाँ प्रगट होना भी बिल्कुल फ़िजूल ख़याल किया जाता मगर सूरत इसके निहायत बर ख़िलाफ़ है यानी वह महापुरुष यहाँ प्रगट भी होते रहे हैं और मालिक भी उन्हें निज दया कर यहाँ भेजता रहा है और उनका यहाँ आना भी सब जीवों के लिए निहा-यत फ़ायदेमंद हुआ है। इस वास्ते इस पृथ्वी-मंडल पर अपनी सच्ची भावना से सच्चा फल हासिल करने के लिये कई बातों की ज़रूरत पड़ती है तब कहीं कुछ काल बीते मुराद पूरी होने के आसार दिखाई देते हैं। ऐसा नहीं कि बाहर भावित वस्तु चाहे जिस प्रकार की बनी रहे—लेकिन अपनी भावना पक्की चाहिये तो उसी से काम पूरा हो सकता है सो हर्गिज़ भी होने का नहीं। काम पूरा होने के लिये निज भावना के संग संग अन्य भी कई बातों या वस्तुओं की जरूरत रहती या पड़ती है। जब वह सभी सामग्री इकट्ठी होती है तब कुछ फल सच्चा

मिल सकता है। कुछ न करने वाले आलसी लोग अपने तन मन इन्द्रियों के गुलाम रहते हुए यह शंका किया करते हैं कि देखो प्रहलाद ने अपनी पक्की भावना ही से नृसिंह भगवान् खंभे में से पैदा कर लिये थे और द्वापर के वक्त में एक नीच जाति शख्स ने गोवर के ही द्रोणाचार्य वना कर (निजी भावना के जोर से) सारी वाणविद्या उस गोवर की मूर्ति से ही हासिल कर ली थी मगर इन लोगों की वुद्धि में यह नहीं आता कि पहिले तो इन दो के वजाय पुराने जमाने से आज तक ऐसे और कितने भक्त हो गये हैं कि जिन्होंने हूवहू वैसा ही कर लिया हो। दूसरे उस प्रहलाद भक्त की भावना उस खंभे में ही सिर्फ भगवान की न थी वल्कि वह तो तोमें मोमें और हरएक चराचर वस्तु में अपने प्रीतम के होने का दृढ़ निश्चय अपने अन्दर में किये वैठा था। फिर इसमें कौन सी आश्चर्य की वात हो गई कि पिता हिरणाकुश ने जव ललकार के उसकी असल परीक्षार्थ यह कहा कि वता इस लोहे के तप्त खंभे में तेरा इष्ट देव (कल्पना किया हुआ भगवान्) कहाँ है तो आप लोग ख्याल करलें कि जिसकी उपासना कई जन्मों से वड़े सच्चे निश्चयपूर्वक हो रही है और, हाल के जन्म में भी जिसने सव कुछ त्याग के एक सर्व व्यापक प्रभु की ऐसी दृढ़ शरण पकड़ी है कि उसके पिता ने उसे अग्नि में भी फिकवाया और पहाड़ से गिरवाया गर्ज़ कि प्रहलाद को अपने निश्चय से डिगाने व शरण से गिराने के लिये वहुत सी कोशिशें की गईं मगर उस वढ़ के क़ाविले तारीफ़ सूरमा भक्त ने सभी आज़मायशों का कड़ा इम्तिहान वड़ी दिलेरी व दृढ़ता के

साथ ऐसा पास किया कि मिसाल में (भूतो न भविष्यति) अन्य कोई आजतक पैदा नहीं हुआ न होगा। इतना होने पर निजभक्तवत्सलता के कारण अगर उस खंभे में ही से बहाना कर भगवान् उस वक्त प्रकट हो गये तो क्या तअज्जुब आप लोग मानते हैं और क्या यह मिसाल सभी के लिये काम आ सकती है अर्थात् हर्गिज़ भी दूसरे किसी जीवधारी से ऐसा अनहोना वाक़्या नहीं हो सकता। तीसरे बड़े बड़े पुरुपार्थ उस प्रहलाद भक्त ने माता के गर्भ से लेकर भगवान के दर्शन देने के समय तक अपनी परम शुभ आशापूर्ण करने के वास्ते किये थे न कि सिर्फ़ खंभे में भगवान् की भावना करने ही से उसका काम चल गया था बल्कि निहायत कठिन और दूसरे जीवों से बन पड़नी ना मुमकिन बातों का उसे सामना करना पड़ा था तब कहीं हुसूले मुराद हुई थी। बस यही हाल उस दूसरे द्वापर वाले गोबर के गुरू धारी शख्स के बारे में भी प्रिय पाठकों को निज अन्दर में ख्याल कर लेना चाहिये कि सिर्फ़ भावना से ही उसका भी काम नहीं बन गया था बल्कि बहुत कुछ पुरुपार्थ व अभ्यास उसने अपनी मनोगत वासना के पूरा करने में दृढ़ होकर किया था तब कहीं मुराद पूरी हुई थी। मगर जब सच्चे द्रोणाचार्य ने उसके हाथ का अँगूठा कटवा लिया तब फिर वह आदमी किसी काम का न रहा और उस अंदरी भावना ने कुछ भी आजन्म फिर उसकी सहायता न की यानी फिर निज भावना से अपने हाथ को भी जैसा का तैसा न बना सका तो अब श्रोतागण निज अन्दर में समझलें कि हम लोगों की भावना कितना मूल्य रखती है। जहाँ सामने भावित वस्तु

सचेतन होती है तो वहाँ तो कर्त्ता को निजी दृढ़ पुरुषार्थयुक्त भावना से दिल चाहा फल मिल सकता है बशर्ते कि फल हासिल होने तक पीछे न हटे मगर जहाँ भावित वस्तु कुछ की कुछ और निहायत जड़ और बेजान हैं वहाँ मेरी राय से तो सफल मनोरथ न कोई कभी हुआ और न अब हो सकता है। इसी वास्ते बीच में प्रसंग लाकर इस भूमिका में हमने भावना का अर्थ खोलकर यह बात दिखाई है कि हे प्रिय मित्र सगुणोपासको ! निजी भावना से सच्चा फल (इस संसार और तन मन संबन्धी क़ैदों से निजात्म छुटकारा) हासिल करने के वास्ते अपनी भावित वस्तु कोई ऐसी तलाश करो जो कि तुमसे बहुत बढ़ की चेतन हो और तुम्हारी भावना की हर तरह से रक्षा व पूरी करने में बहुत कुछ समर्थ हो सो या तो वह पहिले के गुज़रे राम कृष्णादि अवतार थे या कोई २ ऋषि मुनि पहिले ऐसे थे कि हम लोगों की भावना पूरी करा सकते थे और या अब वक्त के सच्चे साध संत और सद्गुरु अगर उनकी तलाश करके सच्ची शरण क़बूल की जाय तो वह भी हमारी परमार्थी सच्ची भावना या चाह पूरी करा सकते हैं। सो इस अवतार-बोध ग्रन्थ में पिछले अवतारों की मिसाल से वर्तमान सच्चे साध संत रूप अवतारों की तरफ़ ही इशारा किया गया है और यह बात दिखाई है कि जब तक ऐसे कामिल पुरुषों से नाता निजी पूरे प्रेम का नहीं जोड़ा जावेगा तब तक न किसी की सगुण उपासना ही सच्ची हो सकती है और न उसका पूरा फल यानी इस संसार से उसके जीवात्मा का सच्चा छुटकारा ही हमेशा के लिये हो सकता है और न तब तक कोई

सगुण निर्गुण उपासक बनने व कहने का मुस्तहक़ हो सकता है। इस प्रकार के लेख लिखने में किसी बात का खंडन मंडन अपनी तरफ़ से इस अवतार बोध ग्रन्थ में नहीं किया गया बल्कि सबके आत्महितकारी सच्ची बात को ऋषि मुनियों या वक्त के सच्चे साध-संतों के तरीक़े पर कथन करने की कोशिश की गई है। अब इसे चाहे कोई माने या न माने या उल्टी माने यह अपनी अपनी मर्ज़ी है परन्तु ग्रंथ-रचियता की यह हर्गिज़ उस वक्त मंशा नहीं हुई है। उसके दिल की बात तो वहाँ पर यह बयान करने की है कि अगले पिछले सभी बुज़र्गों ने इस जीव को बहुतसी बेबशी की अवस्थाओं में अनन्त युगों का फँसा हुआ देखकर यह बात जीवों की तरफ़ से बयान की है कि ये जीव अपने छुटकारे व दुःखों से बिल्कुल रिहाई पाने के वास्ते निज तरफ़ से लौकिक वैदिक अनेक कार्रवाई करते हुए भी सख़्त निराशता का सामना हमेशा से करते रहे हैं यानी अभी तक उनकी असली प्यास नहीं बुझी है बल्कि और ज़्यादा ही दुःखों की नौबतें तैय्यार हो उठ खड़ी दिखाई दे रही हैं—उनके दिल चाहा कोई नतीजा हर्गिज़ भी नहीं मिला है और न आगे मिलने ही की कोई सूरतें उनके हाथ हैं इत्यादि रूप से यह बहुत सी जीवों की परतंत्रता की हालतें सच्चे मालिक और उसके प्यारे पुत्र अवतारों और ऋषि मुनियों व अन्य दूसरे बुज़र्गों को पहिले से पूरी तरह ज्ञात रही हैं और अब भी इन सच्चे साध-संत महात्माओं को अच्छी तरह ज्ञात हैं। जीव चाहें उन्हें ठीक ठीक जाने या न जाने या और की और ही निज बुद्धि-भ्रम से कल्पना कर लेवे या कुछ कुछ जान कर भी

भूल जाय मगर उपरोक्त महापुरुषों का जीव की ये दशाएँ बहुत अच्छी तरह पहिले से मालूम थीं और अब मालूम हैं। इन सब बातों के वहाँ पर कारण भी बयान किये गये हैं और जीवों नाक़ाबिल उपायों का बयान करके सच्चे संत महात्मा और अवतारों की तरफ़ से इन सब प्रकार के दुखिया व बेवश जीवों के छुटकारे का एक यही उपाय सबसे बढ़िया कहा गया है कि सब जीव सब तरफ़ से निज चित्त को हटाकर अपने वक्त के किसी कामिल या अवतारी महापुरुष की चरणशरण इख़्तियार करें तो सहज से उसके सारे दुःखों का समूल नाश हो सकता है। इस बात के लिये और कोई जप, तप, यज्ञ, दान, त्याग, वैरागादि उपाय पूरा साधन नहीं है और न ये किसी से (बग़ैर महापुरुषों की मदद के) पूरे पूरे बन सकते हैं। सिर्फ़ एक उन्हीं के सहारे जीव का गुज़ारा सब मामलों में ठीक ठीक फ़ायदेमंद हो सकता है। अपने आप कोशिश करके या और किसी तरह के उपायों में सिर मार आयु व्यतीत कर के कर्मों का भार भले ही और ज्यादा बढ़ा लिया जाय मगर असली फ़ायदा कुछ नहीं हासिल हो सकता। इससे सब तरफ़ से हटकर एक अपने वक्त के किसी महापुरुष का दामन मज़बूती के साथ पकड़ना चाहिये। यही सबसे उत्तम सलाह वहाँ पर दी गई है और बयान किया है कि इन्हीं मसलहतों के कारण मालिक की तरफ़ से वह कलाधारी व अवतारी महापुरुष यहाँ भेजे जाते हैं। नहीं वह क्यों अपने महान् पवित्र व परम सुख के स्थान को छोड़ इस महा-मलिन दुःखों से भरे संसार में आने की तकलीफ़ उठाएँ

और क्यों मालिक ही उन्हें यहाँ आने का हुक्म दे लेकिन जीवों के ऊपर अपनी अतीव दया से मालिक उन्हें यहाँ भेजता है और वह दयालु महापुरुष यहाँ आकर अनेकों दिक़्क़तें उठा कर क़याम फ़रमाते हैं और जीवों के सच्चे छुटकारे की असली शिक्षा व कार्रवाइयाँ जारी करते हैं। तब जो अधिकारी मनुष्य इस संसार की त्रियतापों से तपे हुए उनकी शरण में आते हैं वह पूरा फ़ायदा निज ज़िन्दगी में उनकी शिक्षा से उठा अंत में सब दुखों से रहित परमानन्द के स्थान जो उन महापुरुषों का मुक़ाम है। उसको प्राप्त होते हैं और जो उनकी शिक्षा नहीं मानते वह हमेशा अपनी करतूतों के फल भोग यमराज के मेहमानख़ाने में चले जाते हैं और पीछे फिर सदा चौरासी के चक्र में घूमते रहते हैं। इसके अलावा यह बात भी वहाँ खोल दी गई है कि यह काम बग़ैर सच्चे सगुण अवतारों के व्यापक ईश्वर से भी नहीं हो सकता और न किसी अन्य देवी देवता ही की ऐसी सामर्थ्य है कि जीवों को सारे बन्धनों से छुड़ाकर चौरासी के फेर से निकाल सकें। सो हर्गिज़ भी नहीं निकाल सकते हैं यानी ये सब दुस्तर कार्य निर्गुण ब्रह्म या सच्चे मालिक के देश से आये हुए सगुण अवतारी महापुरुष या सच्चे साध संत ही कर सकते हैं या उनका कोई जानशीन जो उनके बाद प्रकट हो गया हो तो वह भी उतना ही फ़ायदा जीवों का करा सकता है जितना कि महा-पुरुषों के ज़माने में होता रहा। इत्यादि रूप से वहाँ ऐसा बयान करके पीछे मूर्त्तिपूजा की शुरूआत बयान की गई है और उससे जो फ़ायदा जीवों को हो सकता है उसको दिखा कर

गिरावट का वयान करके अव इन्द्रिलोलुप व स्वार्थी कपटी जीवों ने इस स्थूल उपासना को जो निज उदरपूर्त्ति का वसीला वना लिया है सो भी खोलकर लिख दिया है और ईश्वर भक्ति के वहाने से ये प्रतिमोपासक जो अनुचित कार्रवाइयाँ करते हैं वह वयान करके अवतारों और ऋषि मुनियों का जो इस वारे में असली अभिप्राय है वह भी खोल कर सुना दिया है। वाद में सच्चे महात्माओं की अमूल्य शिक्षा का वयान करके पीछे जो मूर्ख लोग उनकी शिक्षा की निन्दा करते हैं उसका भी ज़िक्र किया है। अन्त में जो फल इन निन्दकों को मिलता है उसका वर्णन करके अपने द्वारा निरूपणीय प्रसंग का तात्पर्य दिखा कर प्रिय पाठकगण व श्रोताओं से सच्चे सगुण अवतारों की असलियत वयान करने की वजह वयान की गई है और सनातनधर्मी इस वारे में जो कुछ समझ रहे हैं तिनके हाल को और उनकी कलियुगी सगुणोपासना की और इस मुतअल्लिक़ उन अवतारी महापुरुषों व वुज़ुर्गों के अभिप्राय को भी प्रकट कथन कर दिया है। वाद में और दो चार वातों के मुतअल्लिक़ ज़िक्र करके इस अवतार-वोध ग्रंथ के प्रकाशित होने के लिये मालिक से प्रार्थना की गई है और निजी दीन अधीनता की वावत दो चार दोहे लिख कर अपनी भूल को पाठकगणों से क्षमा कराया है और फिर मालिक की दया मेहर से ग्रन्थ समाप्ति का कथन (अन्दर में गुरु मालिक का ध्यान रख कर) करके चुप साध निर्विघ्न ग्रन्थ समाप्ति के एवज़ गुरू मालिक के चरणों में वारम्वार शुकराना अदा किया गया है।

अवतार-बोध

महाभारत, भागवत् और वाल्मीकि रामायणादि पुराने ऐतिहासिक ग्रन्थों के पढ़ने सुनने से तो यही निश्चित होता है कि त्रेता, द्वापर आदि पहिले युगों में भी सगुण अवतारी महापुरुषों की गति की जाँच परख (संसारी प्राकृत जीवों की तो गिनती ही क्या है) हर एक परमार्थी प्रेमी भक्त के लिये भी सहल न थी यानी हर एक मनुष्य की तो क्या चलाई है बड़े बड़े विद्वान और प्रेमी परमार्थी भी निज मति के अनुसार ,जल्दी से ही उन अवतरित महापुरुषों की असलियत को (आजकल के समान) नहीं जाँच परख सकते थे। इस बात के सबूत में हम उन्हीं प्राचीन ग्रन्थों की गिनती में जो गीता है उससे और भागवत् से व वाल्मीकि रामायण के आधार पर जो गुसाईं तुलसीदास जी ने भाषा रामायण बनाई है उससे प्रमाण भी पाठकों की स्पष्ट जानकारी के लिये पेश करते हैं। देखो भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २।

श्लोक—न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः॥

अहमादिर्हि देवानां, महर्षीणां च सर्वशः॥

यानी कृष्ण भगवान् कहते हैं कि सिवाय मेरे हमारे प्रभाव को न देवताओं के समूह जानते हैं और न महर्षि, क्योंकि सब प्रकार से मैं इन देवता और ऋषि मुनियों का पैदा करने वाला आदि कारण हूँ इस वास्ते मेरी अचिंत्यादि अद्भुत शक्ति रूप सामर्थ्य और सच्चे स्वरूप व प्रभाव को न देवता ही ठीक ठीक जानते हैं और न बड़े बड़े ऋषि, मुनि ही तो अब समझ लेना चाहिये कि जब पुराने जमाने में उन महापुरुषों की जानकारी में ऐसे पवित्र व्यक्ति, देवता और सर्वज्ञ ऋषि मुनि भी असमर्थ थे तब इस जमाने में सब तरह से बल-बुद्धि हीन मनुष्य कैसे सहज तौर से जान सकते हैं यानी हमारा अभिप्राय यह है कि वर्तमान-काल में सच्चे संत महात्माओं की परख पहिचान में जैसे हम लोगों को नाना तरह के उलटे सीधे ख्याल उठते रहते हैं तैसे ही उस बीते हुए जमाने में भी हर कोई उन सच्चे सगुण अवतारों के दर्शन करते ही नहीं पहिचान लेता था अर्थात् वर्तमानकाल के समान ही उन लोगों को भी इस मामले में अनेक तरह के भ्रम सन्देह अन्दर में पैदा होते रहते थे। दूसरे प्रमाण में अब तुलसीदासजी के रामायण के उत्तरकांड का दोहा भी सुनिये मगर इसका अर्थ कुछ विस्तारपूर्वक होगा सो भी लीजिये।

दोहा—निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण न जाने कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

दोहे के प्रथम चरण का अर्थ—यानी परब्रह्म स्वरूप परमात्मा का जो सदा एक रस रहने वाला निर्विकार, अविनाशी, सच्चा

निर्गुण स्वरूप है, वह तो हमेशा स्वमहिमा में स्थित एक सा ही बना रहता है। इससे अधिकारी जीवों के लिये उस निर्गुण स्वरूप का समझ लेना विद्या बुद्धि की मदद से कुछ सुगम भी है क्योंकि जैसे हम लोगों का जीवात्मा सच्चिदानन्द प्रेमस्वरूप होने से एक रस रहने वाला निर्विकार है तैसे ही उसका भण्डार स्वरूप निर्गुण परमात्मा भी सदा एक रस रहता हुआ अखंड स्वरूप है। इस वास्ते इन दोनों का असली जौहर एक होने से आध्यात्मिक विद्या बुद्धि की मदद से हर कोई जिज्ञासु विद्यावान् गुरुओं के समझाने बुझाने से उस निर्गुण स्वरूप को समझ बूझ भी सकता है लेकिन इतने मात्र से कुछ यह नहीं है कि उसको वह प्राप्त भी कर सक्ता हो यानी उसके साक्षात् दर्शन तो हर एक विद्वान् अधिकारी पुरुष को तभी हो सकते हैं जब कि निज भाग्यवश सहजाभ्यासरूप सुरत-शब्द-योग की युक्ति के भेद को बताने वाले वक्त के कोई सच्चे अभ्यासी सन्त सद्गुरु मिल जायँ। अभिप्राय यह है कि ये अधिकारी जिज्ञासु जब सच्ची जिज्ञासा अपने अन्दर पैदा करके उक्त महापुरुषों की तलाश करते हैं तब वे कामिल पुरुष भी ऐसे ही पिपासू जीवों की पिपासा दूर करने की ग़रज़ से यहाँ अवतरित होते हैं और उन प्रेमी भक्तों को सहज में ही मिल जाते हैं और फिर अपनी निष्प्रयोजन कृपा द्वारा उनको असल भेद बताकर उस निर्गुण स्वरूप की प्राप्ति भी वही करा देते हैं यानी साधनों की कमाई में मेहनत के तारतम्यानुसार अपने अपने दर्जों के मुताबिक़ अबेर सबेर का भेद छोड़ कर हर एक प्रेमीजन उन महापुरुषों की बताई हुई युक्ति के अभ्यास से तो उसके निजात्मद्वारा दर्शन भी

कर सकता है नहीं तो अपने आप कल्पों तक कोई निजी तौर पर अनेकों उपाय करता रहे मगर उस सच्चिदानन्द निरवयव, निराकार का एक बाल बराबर भी असली भेद नहीं पा सकता। हाँ यह जरूर है कि किसी वाचक गुरु की मदद से निर्गुणी वेदान्त-वचनों को पढ़ सुन कर निजी मन की कल्पनाओं से वाच्य, लक्ष्य और जहती अजहती लक्षणादि का हिसाब सीख कर मुख से निर्गुण ब्रह्म और आत्मा के गीत भले ही गाया करे और दूसरों को उपनिषद्, गीतादि के महावाक्यों द्वारा अभेद दिखाकर चाहे ब्रह्म बना दे मगर आप कोरे का कोरा ही बैठा है। अब तुलसीदासजी के दोहे के दूसरे चरण (सगुण न जाने कोइ) का अर्थ सुनिये— हमारा उपरोक्त शीर्षकवाला जो लेख था कि सच्चे सगुण अवतारों की परख पहिचान पुराने जमाने में भी सहल न थी उसका यह दूसरा चरण समर्थन करता है और आगे के लिये जो ज्ञान बीन है उसका आधार है जैसे कि उस सगुण को हर एक मनुष्य निज विद्या बुद्धि की मदद से सहज में ही नहीं जान बूझ सकता है। इसके कारण को उक्त दोहे के नीचे के यह दो चरण इस तौर पर पूरा करते हैं कि

सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥

यानी उस निर्गुण ब्रह्म रूप भण्डार से लहर या किरण के समान निकल कर जो सगुण अवतार निज इच्छावश (न कि अन्य जीवों की तरह निज कर्मवश) अन्य उपासक प्रेमी भक्तों के अर्थ मनुष्य-तन धारण करता है। उसको काम, क्रोध,

लोभ, मोहादि की अनन्त वासनाओं से सनी हुई बुद्धि के द्वारा इस हृदय के घाट पर ही कोई मनुष्य नहीं जाँच परख कर सक्ता है यानी ऐसा नहीं है कि चाहे कोई देव हो या ऋषि, मुनि या मनुष्य-भक्त हो मगर उन सच्चे सगुण रूप अवतारी महापुरुषों को इस क्लेश, कर्म, विपाक और भली बुरी नाना वासनाओं में ग्रसित बुद्धि से असली परख पहिचान कर ले सो हर्गिज भी नहीं हो सक्ता क्योंकि इसमें कठिनाई का हेतु यह है कि वह अवतारी महापुरुष सुगम यानी दूसरे प्राकृत जीवों से मिलते जुलते ढंग पर शारीरिक व मानसिक क्रियाएँ अन्तर में (आप असंग रहते हुए) इस तरह पर करते हैं कि उस भेद को अयोगी पुरुष कभी ज्ञात नहीं कर सक्ता। जैसे कि सीता जी के रावण से हरे जाने पर श्री रामचन्द्र जी की कहनि, रहनि पर ही दृष्टान्त के तौर पर निगाह डालिये कि श्री रामचन्द्र जी महाराज लक्ष्मण जी से फ़रमाते हैं:—

चौपाई।

अहह तात भल कीनेहु नाहीं। सीय बिना मम जीवन काही॥
यहि ते कवन विपति बड़ भाई। खोयेहु सीय काननहिं आई॥

और फिर "नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतन्त्र राम भगवाना" के तौर पर सब कुछ जानते बूझते हुए भी इस तरह सोच फ़िक्र में गिरफ़्तार हो जाते हैं कि पास का रहने वाला सदा का संगी साथी भी निज बुद्धि से उनकी असली अवस्था का ठीक ठीक अनुमान भी नहीं लगा सक्ता। जैसे कि शेषावतार होने

पर महा बुद्धिमान लक्ष्मण जी भी श्री रामचन्द्र जी की उस समय की अवस्था का कुछ भी अनुमान न लगा सके। बल्कि जैसे दूसरे जीव अपने संबन्धियों के दुखी होने पर निहायत घबड़ाहट पैदा करते हैं तैसे ही लक्ष्मण जी भी उस समय श्री रामचन्द्र जी की दशा देख देख कर ऐसे दुखी हो गये जैसे कि इस निम्नोक्त दोहे से जाहिर होता है:—

मणि विहीन फणि दीन जिमि, मीन हीन जिमि वारि।
तिमि व्याकुल भये लषन तहँ, रघुवर दशा निहारि॥

मगर वह सच्चे सगुण अवतारी महापुरुष इस तरह पर दूसरे प्राकृत जीवों के भ्रम और सन्देह दायक साधारण चरितों में भी निम्नोक्त कड़ी के मुताबिक़ अन्दर में निर्लेप ही बने रहते हैं:—

पूरन काम राम सुखरासी। मनुज चरित कर अज अविनासी॥

और उन अवतारों के साधारण रूप सुगम चरित्रों की दूसरे जीवों की अनभिज्ञता में शिव जी की कही हुई यह कड़ी इस तरह पर प्रमाण है:—

चरित राम के सगुण भवानी। तर्कि न जाँय बुद्धि मन बानी॥
अस विचार जो परम विरागी। रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी॥

इत्यादि रूप से यहाँ तक अभी हमने साधारण सुगम चरित्रों का ही जिक्र किया है। इनके सिवाय कुछ अन्य प्रकार के सुगम चरित्रों का हाल और भी सुनिये। जैसे उन सगुण अवतारों के दूसरे प्रकार के यह भी सुगम चरित्र ही हैं कि रामावतार में रावणादि का मारना, बहुरूप हो दिखाना और कृष्ण-अवतार में

कंस का वध करना व नाग नाथना आदि ऐसे जो चरित्र हैं सो भी साधारण ही हैं क्योंकि ऐसे कारनामे तो मायावी राक्षसों और जप तप योगाभ्यासवान् बहुत से जीवों ने भी दिखलाये हैं यानी साधन करने से इन जपी तपी रूप युंजान् योगियों को भी चिरकाल अभ्यास करने से बहुरूप दिखाना आदि सिद्धियाँ हासिल हो गई हैं जैसे कि रावणादि का युद्ध में बहुरूप हो जाना और कैलाश का उठा लेना और हनुमान का उस सञ्जीवन बूटी वाले पर्वत को ही उठा कर ले आना और भी नाना रूप धारण करना आदि अष्ट सिद्धियों तक बहुत से ऋषि मुनि, योगी, योगीश्वरों के इन सुगम चरित्रों का ज़िक्र जगह जगह पर पुराने शास्त्रों व पुराणों में पाया जाता है। झूठी सांची की अन्तर्यामी मालिक जानें मगर ये साधारण सुगम चरित्र प्राकृत जनों को छोड़ दूसरे जीवों में ज़रूर पाये जाते हैं। इसी वास्ते इनको सुगम चरित्र कहा है। सुगम के लफ़्ज़ी मानी यही हैं कि जिसमें अन्य जीवों की भी गम्य हो। हाँ, यह बात हम मानते हैं कि यह सुगम चरित्र रूपी साधारण लक्षण इन अवतार रूपी युक्त योगियों में तो जन्म से ही स्वाभाविक मौजूद रहते हैं और दूसरे जीवों को यत्नसाध्य होते हैं। बस इतना ही इन दोनों के आपसी उक्त चरित्रों में फ़र्क़ समझना चाहिये। अब पूर्वोक्त प्रकार से हमारे इस सारे लेख से पाठकों को ज्ञात कर लेना चाहिये कि ऊपर से यहाँ तक जो हमने कहा है वह सब सुगम चरित्रों का ही बयान है और खान, पान, निद्रा, आलस, उठना बैठना, बोलना चालना, सोच फ़िक्र करना आदि से लेकर शारीरिक और मानसिक जो व्यवहार

हैं वह सब प्राकृत जीवों से लेकर महापुरुषों पर्यन्त सब में समान ही हैं यानी इनमें कमीवेशी के हिसाब से शारीरिक व मानसिक धर्म तो आम तौर पर सब में बराबर ही मौजूद रहते हैं चाहे कोई मामूली जीव हो या अलौकिक महापुरुष रूपी सगुण अवतार हो। इस देश के मसाले से बने हुए इन तन मन इन्द्रियों के मुतल्लिक उक्त क्रियाएँ तो यहाँ पर सभी को पहले करनी पड़ी हैं और अब करनी होंगी और पीछे भी करनी पड़ेंगी। ये सब सुगम चरित्र ही कहे जाते हैं। यहाँ तक सुगम चरित्रों का हाल गुसाईं तुलसीदास जी के पूर्वोक्त दोहे की तीसरी कड़ी में जो सुगम शब्द था उसका अर्थ कुछ विस्तार से कह कर पाठकों की सुगम जानकारी के लिये लिखा गया है। आगे अब यहाँ से अगम चरित्रों का भी कुछ थोड़ा सा हाल सुनिये। पहिले तो अगम जो लफ़्ज़ है उसका भावार्थ कहते हैं यानी जो असाधारण लक्षण रूपी क्रिया अन्य मामूली जीव या ऋषि, मुनि, योगी, योगीश्वरों को यत्न करने पर भी अगम्य कहिये प्राप्त न हो सके वह अगम चरित्र कहे जाते हैं अर्थात् उस कारनामे रूप चमत्कार को वह अलौकिक सामर्थ्यवान् महापुरुष ही अपनी अद्भुत शक्ति से दिखा सकते हैं अन्य कोई चाहे मामूली जीव हो या कुछ ऊँचे संस्कार वाला जप तप योगाभ्यासवान् क़ाबिल व्यक्ति हो मगर उसको यह गति करोड़ों उपाय करने पर भी हासिल नहीं हो सकती और इसी अगम चरित्र रूप असाधारण लक्षण से वह अवतरित सगुण ब्रह्म यहाँ पर अन्य जीवों से पृथक् पहचाने जाते हैं, लेकिन एक बात हम और भी अपने प्रिय पाठकों को यहाँ पर जतलाए देते हैं

कि वह ऐसा ख़्याल अपने अन्दर न ले बैठें कि जिसमें ये निम्नोक्त लक्षण हों तो वह ही सगुण अवतार हो सकता है अन्य नहीं सो इस भ्रम को अपने मन में कभी न आने दें क्योंकि जो ऊपर के भिन्न भिन्न चेतन मण्डलों से भिन्न भिन्न सगुण अवतार आते हैं उनमें अपने अपने दर्जे के लिहाज़ से अनन्त शक्तियाँ रहती हैं उन को इख़्तियार है कि चाहे जिस शक्ति को प्रकट करें या न करें या जिस वक़्त के लिये जो मसलहत हो वैसी ही प्रकट कर दिखावें। अभिप्राय यह है कि हम लोगों को किसी पिछले अवतरित महापुरुषों के ग्रन्थों में लिखे हुए चरित्र या चमत्कार पर ही न अटक जाना चाहिये और न उनसे वक़्त के किसी सगुण अवतार की परख पहिचान ही करने का दावा करना चाहिये। हमारी दृष्टि तो हरदम अपने जीते जी कल्याण होने पर जमी रहे नहीं तो बहुत सा धोखा हो जावेगा। अब अगर कोई यह सवाल करे कि उन महापुरुषों का वह अगम चरित्र कौन है कि जिसका आप ज़िक्र करना चाहते हैं तो सुनिये कि प्रथम जो विराट् स्वरूप का दिखलाना है उसी को अन्य कोई जीव नहीं दिखला सकता। इस वास्ते एक यही उन महापुरुषों का सब की गम्य से परे अगम चरित्र है और पहिले यह विराट् स्वरूप ज़रूर ही उन सगुण अवतारों ने अपने अनन्य प्रेमी भक्तों को उनके विश्वास को दृढ़ कराने के वास्ते दिखलाया है। प्रमाण के लिये कौशिल्या, काकभुशण्ड, अर्जुन आदि कई प्रेमी भक्तों की कथाएं ग्रन्थान्तरों में प्रसिद्ध हैं यानी बग़ैर अनन्य प्रेमाभक्ति के अन्य किसी उपाय

रूप वेदाध्ययन जप, तप, यज्ञ, दान आदि से कोई ऋषि मुनि देवता और मनुष्य जिसे नहीं देख सकता है ऐसे अलौकिक चरित्रों वाले अगम रूप का इन उपरोक्त प्रेमियों ने अपनी निहायत उत्कृष्ट भक्ति के एवज दर्शन पाया था सो मेरी छोटी सी समझ से एक यह भी उन सगुण अवतारों का अगम रूप और अगम चरित्र है जो कि पिछले व अगले और मध्य के अन्य किसी तपसी और योगी, योगीश्वरों में नहीं पाया जाता। और दूसरा अगम चरित्र यह है कि अपने तन, मन, इन्द्रियों से स्वेच्छानुसार काम लेना यानी जिन जिन भोगों में मामूली जीव और विद्यावान् व्यक्तियाँ अपने तन, मन, इन्द्रियों के अधीन चार नाचार वर्त्तते हैं और उनको उस वक्त अपनी—अहंता का और अपने स्वरूप का निज अन्दर में ख्याल तक भी नहीं पैदा होता मगर इसके वरखिलाफ वह महापुरुष इन्हीं स्थावर जंगम यानी जड़ चेतन पदार्थों में आशा वासना से रहित निजी वर्त्ताव करते हैं अर्थात् अपने तन मन इन्द्रियों से स्वेच्छावश (न कि मन इन्द्रियों के वश) काम लेते हुए निर्लेप और निष्पाप ही बने रहते हैं और अपना सूत हमेशा ही निज भंडार से जोड़े रहते हैं। लेकिन इस बात का पता न तो उनके संगी साथियों को चलता है और न अन्य जीवों की ही समझ में कुछ आता है क्योंकि इन लोगों को तो वह महापुरुष अपने समान ही खाता पीता, लेता देता, उठता बैठता, हंसता खेलता, बोलता चालता, सोता जागता हुआ रूप व्यवहार करता दीखता है मगर वास्तव में वे कामिल पुरुष कुछ नहीं करते हैं। इसमें दृष्टान्त आगे लिखा हुआ दुर्वासा व

श्रीकृष्ण महाराज का ही पाठकों को विचार लेना चाहिये जो कि सब कुछ करते कराते हुए भी अपने को बिल्कुल निर्लेप समझते हैं बल्कि है ही वह निर्लेप। इसी वास्ते यह उनका अगम चरित्र कहा जाता है। यद्यपि यह लक्षण उन सगुण अवतारी महा पुरुषों के बजाय दूसरे योगी महात्माओं में भी मौजूद है तथापि इतना फ़र्क़ इन दोनों में जरूर रहता है कि वह अवतारी महापुरुष तो जन्म से ही बग़ैर किसी यत्न के उक्त चरित्र व गति वाले होते हैं और दूसरों को यह अगम चरित्र रूप असाधारण लक्षण बहुत काल तक निरन्तर साधन करने से ही सिद्ध होते हैं। इस सारे प्रसंग का यह अभिप्राय है कि सच्चे अवतार या पहुँचे हुए कामिल पुरुष जिन तीनों अवस्थाओं के व्यवहार व चरित्रों में दूसरों के देखते हुए वर्ताव कर चौथी तुरिया रूप असंसर्ग गति में हरदम बइख्तियार आया जाया करते हैं और उन जाग्रत् आदि अवस्थाओं के व्यवहारों में अपने को हमेशा कमल-पत्रवत् रखते हैं। उन्हीं तीनों (जाग्रत्-स्वप्न सुषुप्ति) में चौथी (तुरिया) को छोड़ अन्य प्राकृत संसारी लोग और मांमूली परमार्थी जीव या उनके संगी साथी बेइख्तियार यानी परतंत्र निज निज कर्मों वश वे सुधि होते हुए आते जाते हैं। उस वक़्त इन लोगों को कुछ भी उस चौथी तुरिया-गति का यानी अपने वास्तविक रूप का अनुमान नहीं हो सकता बल्कि सच पूछिये तो उन तीनों जाहिरी अवस्थाओं का भी इन लोगों को कुछ ठीक ठीक पता नहीं है तब फिर उन अवतारी महापुरुषों की यह उपरोक्त जीव किस तरह असली

परख पहिचान कर सकते हैं और किस तरह गुसाईं तुलसीदास जी के उपरोक्त दोहे की नीचे लिखी कड़ी में कहे हुए सुगम अगम चरित्रों के वर्ताव का हाल समझ सकते हैं अर्थात् कुछ भी ख्याल में नहीं ला सकते। इसी वास्ते उन ऊँचे महापुरुषों के अपने से मिलते जुलते हुए ढंग पर इन ज़ाहिरी तौर के उपरोक्त सुगम चरित्रों को देख देख कर संसारी जीव या मामूली परमार्थी व उनके संगी साथियों को दम दम पर नाना भ्रम सन्देह अन्दर में उठते रहते हैं और इन सगुण अवतारों की असली अवस्था का कुछ भी हाल इन लोगों की समझ में नहीं आता है और न जल्दी अडिग प्रीति प्रतीति ही आती है और न असली परख पहिचान ही हरएक प्रेमी भक्त को उपरोक्त सुगम अगम चरित्र होने देते हैं बल्कि संसारियों से तो और उनकी मनोमलिनता के सबब से तरह तरह के वाक्य कुवाक्य बुलाते हुए नाना भाँति की निन्दा कराते हैं और जो इन महापुरुषों के संगी साथी प्रेमी परमार्थी हैं उनके चित्त में भी (सिवाय किन्हीं विरलों के) वक़्त वक़्त पर सन्देह पैदा करते रहते हैं और जब तब उनकी अन्दरी प्रीति प्रतीति में भी शिथिलता यानी ढीलापन डालते हुए प्रेमाभक्ति की कार्रवाइयों के सच्चे वर्ताव में आलस व सुस्ती पैदा कर देते हैं। अब इस सब का ख़ुलासा (अर्थ) यह है कि उन सच्चे सगुण अवतारों की निज रूह की डोर तो (इन जाग्रतादि सारी अवस्थाओं के परे) हमेशा व हरवक़्त अपने निज भंडार के साथ ही लगी रहती है। जैसे किसी दरिया में समुद्र से आने वाली लहररूप ज्वारभाटे का सूत व सम्बन्ध निज भंडार रूप समुद्र से

किसी हालत में भी नहीं टूटता तैसे ही उन महापुरुषों की आत्मा का मेल (बग़ैर किसी रुकावट के) हमेशा अपने परमपिता मालिक के साथ लगा रहता है। मगर बाहर से दूसरे देखने वालों को साधारण मनुष्य ही दिखाई देते हैं। ऊपर से चाहे किसी प्रकार का व्यवहार व बर्ताव यहाँ पर इन मामूली बुद्धि वालों को उनका प्रकट दिखलाई दे और इन लोगों की स्थूल दृष्टि में उन महापुरुषों की कारवाई काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से मिली हुई प्राकृत जीवों की सी पाप-पुण्य-युक्त हो। लेकिन असल में वह सबसे इसी तरह पर अलग हैं जैसे कि सभी जीव। परमार्थी या मामूली मनुष्य अपने अपने कर्मों के अनुसार इन जाग्रतादि अवस्थाओं में एक से जब दूसरी में जाते हैं यानी जाग्रत् से स्वप्न की अवस्था में पहुँचते हैं तब उस छोड़ी हुई अवस्था का (तन-मन, इन्द्रियों मुतल्लिक़) सारा ही तमाशा व सुख दुख रूपी व्यवहार एक दम भूल जाते हैं यानो जाग्रत् का स्वप्न में और स्वप्न का सुषुप्ति में तन, मन, इन्द्रिय और कारण शरीर रचित प्रपंच इन मामूली जीवों को कुछ भी याद नहीं रहता। इसी तरह वह सच्चे महापुरुष भी इन तीनों अवस्थाओं के पार निजात्मक साक्षात्कार रूप चौथी तुरिया अवस्था में जब हमेशा रहते हैं और उस चौथी के भी परे अपने परम प्यारे मालिक के साथ एक हो जाते हैं तब फिर उन पर इन तीनों अवस्थाओं में होने वाली कारवाइयों का क्या असर हो सकता है अर्थात् रंचक मात्र भी लेप या दाग़ नहीं लग सकता परन्तु अन्य सब जीवों के वास्ते तो यह महान् अगम व अशक्य अवस्था और ना मालूम बात है। अब इस उपरोक्त सारे बयान में पाठकों को

बिल्कुल सन्देहरहित कर देने के वास्ते प्रमाण रूप में गीता के अठारहवें अध्याय का सत्रहवां मन्त्र और किसी दूसरे शास्त्र में शेष भगवान् का कहा हुआ एक श्लोक जरूर नीचे लिखने योग्य है:—

मन्त्र

यस्यनाहं कृतोभावो, बुद्धिर्यस्यनलिप्यते ।
हत्वापि सइमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥

अर्थ—जिस शख्स को अहंकृत भाव नहीं यानी मैं इन कर्मों का कर्त्ता हूँ ऐसी भावना रूप वासना जिस शख्स के अन्दर में स्वप्न में भी नहीं रहती और किसी कृत्य के फल में जिसकी बुद्धि लिपायमान नहीं होती यानी 'मैं इन निज करतूतों के फलों को भोगूँ या आगे भोगूँगा' ऐसा ख्याल, जिसके मन में किसी हालत में भी नहीं पैदा होता। ऐसा सच्चा ब्रह्मदर्शी या कोई सगुण अवतारी महापुरुष कदाचित् इन सब लोगों को हनन भी करे यानी तन मन इन्द्रियों मुतअल्लिक़ ऊँच नीच रूप चाहे जैसी कार्रवाइयों में लगा रहे परन्तु वह सच्चा आत्मदर्शी पुरुष असल में किसी भी क्रिया का कर्त्ता नहीं है और न किसी ऊँच नीच क्रिया जन्य भले बुरे फल के साथ उसका सम्बन्ध है अर्थात् वह इष्टानिष्ट किसी फल का भोक्ता नहीं हो सकता इसके अलावा इसी उपरोक्त मंत्र के भावार्थ की पुष्टि करने वाला यह शेष भगवान् का वाक्य रूपी श्लोक है।

श्लोक

हयमेध शतसहस्राण्यथ कुरुते ब्रह्मघात लक्षाणि
परमार्थ विन्न पुण्येन च पापैर्स्पृश्यते विमलः ॥

इसका असली अर्थ तो ऊपर हो चुका लेकिन संक्षेप में भावार्थ यह है कि जो तत्ववेत्ता ज्ञानी या अवतारी महापुरुष निजात्म दर्शन द्वारा ब्रह्म के अपरोक्षदर्शी हैं। वह चाहे हजारों व लाखों अश्वमेध यज्ञों को करें या चाहे लाखों ब्राह्मणों का हनन करें मगर वह उन यज्ञजन्य पुण्यों के साथ और ब्रह्महत्या-जन्य पापों से बिल्कुल भी लिपायमान नहीं होते हैं क्योंकि वह महापुरुष इन दोनों तरह के कर्मों के फल दिलाने वाले पंचक्लेशों व तन, मन, इन्द्रियों के मुतल्लिक़ आसक्तियों और नाना आशा वासनाओं से बिल्कुल रहित हैं। इसी वास्ते गुसाईं जी के उक्त दोहे की निचली कड़ी में यह लिखा था कि (सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होय) यानी उन सब महापुरुष और सगुण अवतारों के जैसे कि उपरोक्त प्रकार से नाना तरह के सुगम अगम चरित्र, बयान किये गये हैं तिनको देख देख और सुन सुन कर पिछले और इस वक्त के साधारण बुद्धि वाले जीवों की तो क्या चलाई है प्राचीन काल के बड़े बड़े तत्ववेत्ता महान् बुद्धिवान् ऋषि, मुनियों के चित्त में भी अनेकों भाँति के भ्रम सन्देह पैदा हो जाते थे और इस मामले में वह लोग बहुत सा धोखा खाते रहे हैं तो फिर इस वक्त यानी कलिकाल के लोग जो कि—

कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।

के समान गर्क हो रहे हैं तिनको किसी सच्चे अवतार की या वक्त के संत सद्गुरु की एकाएक किस तरह घर बैठे ही परख पहिचान हो सकती है यानी अत्यन्त कठोर और अनन्त पाप रूप मैलों से भरी हुई इस तुच्छ बुद्धि के वस की बात नहीं है कि उन महापुरुषों की गति को कुछ भी अन्दाज से ही जांच परख कर सके सो हर्गिज़ कुछ अनुमान में भी नहीं ला सकती। इस वास्ते शुरू में हमारे इस लेख का मूल शीर्षक यह था कि प्राचीन काल में भी उन पुराने जमाने के सगुण अवतारों की परख पहिचान संसारी और हर एक परमार्थी प्रेमी भक्त के लिये भी आसान न थी यानी यह मामला ऐसा न था जैसा कि आजकल के ग्रामीण (कम बुद्धि वाले) और कुछ अर्द्ध पंडित निज अन्दर में समझ रहे हैं। इस मामले में बड़े बड़े ऋषि मुनि और देवता भी चक्कर खाते रहे हैं। इस बात के पुष्ट करने के लिये हमने शुरू में गीता का मन्त्र और गुसाईं जी का दोहा श्रोतागणों के चित्त का सन्देह दूर करने के लिये लिखा है। अब पाठकों की अधिक जानकारी के लिये दृष्टान्त के तौर पर पुराने जमाने के (प्राकृत जीवों को तो इसमें लिखें ही क्या) बड़े बड़े प्रेमी परमार्थी भक्तों ही को पेश कर दिखायेंगे। यानी तुलसी कृत रामायण, गीता, भागवतादि पुराने शास्त्रों से लेकर श्रोता गणों के चित्त में यह बात दृढ़ायेंगे कि यह भूतकाल के भक्तजन भी वक्त वक्त पर उन अवतरित महापुरुषों के उपरोक्त सुगम अगम चरित्रों को देख देख व सुन सुन कर भ्रम में पड़ जाते थे और

जब तब उन महापुरुषों की निस्वत प्रीति प्रतीति से डिग कर उन लोगों के मन में भी .खुश्की आ जाती थी और वह भी मन के मलिन विकारों से धोखे में आकर पहिले उन सगुण अवतारों की कुछ कुछ सेवा भक्ति करते हुए या प्रथम श्रद्धा भक्ति उन महापुरुषों की निस्वत उन लोगों के चित्त में पैदा होकर भी पीछे उपरोक्त कार्रवाइयों को देख कर अभाव ले आते थे और फिर बहुत दिन तक भी उक्त क्रियाओं की मसलहत को ठीक ठीक निज हृदय के मानसी घाट पर अपने आप तो क्या किसी और के समझाने बुझाने से भी नहीं समझ पाते थे। लेकिन इन दृष्टान्तों से पेश्तर यहाँ पर हमारी राय से जो निम्नोक्त एक शंका पैदा होती है उसको रफ़ा कर दिया जाय।

शंका—उपरोक्त प्रकार से इस सारे लेख से तो यही मन के अन्दर बोध उत्पन्न होता है कि उन सगुण अवतारों की परख पहिचान न प्राचीन काल में किसी को हो सकी और न अब हो सकती है यानी आपके कथनानुसार जब इस कसौटी में प्राचीन काल के ऋषि, मुनि ही पूरे न उतरे तब आजकल के हमसे अधम जीवों को तो इस वक्त के अवतारी सन्त सद्गुरुओं की जाँच परख हो ही क्या सकती है अर्थात् हम लोग तो कुछ भी नहीं जान बूझ सकते। इससे हमारे जीव का उद्धार भला कैसे हो सकता है यानी उम्मेद की कोई सूरत नहीं है।

समाधान—जवाब में हम ऐसे लोगों से यही प्रार्थना करेंगे कि हमारा मन्तव्य और इस उपरोक्त सारे लेख का यह अभिप्राय नहीं

है कि उन प्राचीन कालके अवतारों की और वक़्त के अवतारों की असलियत या परख पहिचान किसी को क़तई कुछ भी हुई ही नहीं है और न आगे अब कुछ हो सकती है यह हमारा तात्पर्य नहीं है। हमारा असल मतलब तो यह है कि जो आज कल तुच्छ बुद्धि वाले लोग पहिले परख पहिचान करके फिर पीछे से महापुरुषों की शरण क़बूल करना अपने चित्त का उद्देश्य बनाये बैठे हैं उनकी आँखों के सामने हमें यह दिखलाना है कि इस मामले में आप लोगों की तो हैसियत ही इस जमाने में क्या है पहिले के ऋषि मुनि और प्रेमी भक्त भी वक़्त, वक़्त, पर धोखा खाते रहे हैं। इससे हमारी अंतरी मन्शा यह हर्गिज़ नहीं है कि उन महात्माओं को न पहिले कोई कुछ जान सका और न अब जान पायेगा यानी अपने अपने पूर्व संस्कार या उन महापुरुषों की दया मेहर से और अपनी अपनी परमार्थी ग़र्ज़मन्दी के हिसाब से पहिले भी उन महापुरुषों को ऋषि मुनि और प्रेमी भक्तों ने परखा व पहिचाना और अब भी ऐसा हो सकता है बल्कि आज कल तो संतों के चरणों में लाखों जीव लगे हुए हैं। इस वास्ते इस मामले में क़तई नाउम्मेदी की सूरत नहीं समझिये। खोजी या परमार्थ-पिपासु जनों को अपनी अपनी परमार्थी कार्रवाइयों के करने कराने लायक़ महापुरुषों की निस्बत जानकारी उनके संग सोहबत में आने जाने से जरूर कुछ न कुछ हो ही जाती है लेकिन जो ओनम् या ए. बी. सी. डी. भी नहीं जानते हैं उनको शास्त्रों की उत्तम परीक्षाओं या बी. ए. एम. ए. का हाल कोई

आचार्य व प्रोफ़ेसर कैसे समझा सकता है। इसी प्रकार के मनुष्यों से हमारा यह कहना है कि तुम लोग इस (ऊँचे दर्जे की परख-पहिचान के) झमेले में न पड़ो। यह मामला तुम्हारे वश का नहीं है। अच्छा अब उन पिछले परख पहिचान वालों के हालात को थोड़ा सा सुनिये।

पहिला दृष्टान्त सती पार्वती जी का।

प्रथम इस बारे में देखिये कि श्री रामचन्द्र जी की निस्बत रामायण में लिखा है कि त्रेता युग से पवित्र समय में सब जीवों के शंकर यानी कल्याण-कर्त्ता जो सर्वज्ञ शिव जी भगवान् हैं उनके दिन रात संग में रहने वाली परम पतिव्रता, जो पूर्व सती नाम से प्रसिद्धि थीं और फिर पीछे पार्वती नाम से पुकारी गईं, शिव जी की भार्या को ही देखिये कि कैसा भ्रम हुआ है। एक समय उन्होंने अपने पति शिवजी के साथ मार्ग में चलते हुए श्री रामचन्द्र जी के दर्शन किये मगर फिर भी वह ऐसे अज्ञान में फँस गईं कि शिवजी के समझाने बुझाने का भी उन पर कुछ असर नहीं हुआ। उन्होंने रास्ता चलते हुए देखा कि एक परम मनोहर पुरुप अद्भुत छवि वाले सामने से आ रहे हैं और उन्हें देखते ही शिव जी ने बड़े ही प्रेम पूर्वक मत्था नवाया लेकिन सती इस चरित को देख कर बड़ी ही चकित हुईं और अपने मन में अनेक तरह की शंकाएँ करती हुईं कलाबाजियां खाने लगीं यानी ख्याल करने लगीं कि.......................

चौपाई।

शंकर जगत वंद्य जगदीशा। सुर नर मुनि सब नावत शीशा॥
तिन नृप सुतनि कीन्ह परणामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा॥
भये मगन छवि तासु विलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहत न रोकी॥
दोहा—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धर होय नर, जाय न गावत वेद॥

चौपाई।

विष्णु जो सुर हित नर तनु धारी। सोउ सर्वज्ञ यथा त्रिपुरारी॥
खोजत सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी॥
शंभु गिरा पुनि मृषा न होई। शिव सर्वज्ञ जान सब कोई॥
अस संशय मन भयेउ अपारा। होय न हृदय प्रबोध प्रचारा॥

इत्यादि रूप से सती जी के मन में अज्ञानजन्य जब घोर भ्रम पैदा हुआ तब शिव जी ने अपनी सर्वज्ञता से उनके चित्त का सारा व्यौरा समझ लिया कि इन सती जी के अन्दर महान् अन्धकार रूप अज्ञान का पर्दा पड़ रहा है इस वास्ते इसको जरूर दूर करना चाहिये। ऐसा मन में ठान सती जी को शंकर भगवान् समझाने लगे। "यद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अन्तरयामी सब जानी" इस प्रकार से यद्यपि सती जी ने अपने अन्दर का हाल कुछ प्रकट नहीं किया तथापि शिव जी ने सब कुछ जान बूझ कर सती जी को बोध कराने के लिये यह शिक्षा फ़रमाई—

चौपाई।

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ। संशय उर न धरिय अस काऊ॥

जासु कथा कुंभज ऋषि गाई। भक्ति जासु मैं मुनिहिं सुनाई॥
सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाय सदा मुनि धीरा॥

छंद।

मुनि धीर योगी सिद्ध संतत विमल मन जिहिं ध्यावहीं॥
कहि नेति निगम पुराण आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकायपति माया धनी॥
अवतरेउ अपने भक्त हित निज तंत्र नित रघुकुल मनी॥

इत्यादि रूप से शिव जी से सर्वज्ञ वक्ता ने निज यथार्थ उपदेश से बहुत कुछ भवानी जी को समझाया बुझाया लेकिन उन पर कुछ भी असर न हुआ—

सोरठा—लाग न उर उपदेश, यदपि कहेउ शिव बार बहु॥

इत्यादि रूप से जब देखा कि इनको हमारी बात का कुछ भी यक़ीन नहीं होता है तब ऊपर के कहे हुए सोरठे की निचली कड़ी से शिव जी हँस कर यह कहने लगे:—

सोरठा—बोले बिहँसि महेश, हरि माया बल जानि जिय॥

चौपाई।

जो तुम्हरे मन अति सन्देहू। तौ किन जाय परीक्षा लेहू॥
तब लगि बैठि रहौं बट-छाईं। जब लगि तुम ऐहहु मोहि पाईं॥

इत्यादि रूप से ऐसा जब शिव जी ने कहा तो सती जी सोच विचार के परीक्षा करने ही को चल दीं और अपने मन में सोचने लगीं कि क्या करना चाहिये। अनेक चिन्ताएँ करने के बाद सती जी ने सीता जी का रूप धारण किया और श्रीरामचन्द्र जी के सामने हो कर निकलीं। तब भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने उनके

कपट के वेष को पहिचान कर यह कहा कि तुम दक्ष प्रजापति की पुत्री होकर निज पति शिव जी को छोड़ इस जंगल में अकेली क्यों घूम रही हो ? इसका क्या कारण है ? ऐसा जब सती जी ने सुना तो बिल्कुल लाजवाब हो निहायत शर्माती पछिताती हुईं वहाँ से किनारा कर पीछे लौट कर चल दीं और फिर मार्ग में अव्वल से अखीर तक की अपनी निहायत मूर्खता की सारी करतूत का ख्याल करके बड़ी ही झुरीं और पछिताईं। जब बहुत ही दुखी हुईं तो आँखें मूँद कर रास्ते के किनारे पर बैठ गईं तब श्रीराम-चन्द्र जी की दया से मन निश्चल हुआ और उनकी सुरत ऊपर को खिचने लगी और अपने दिव्य नेत्र द्वारा उन सगुण अवतारी श्रीरामचन्द्र जी के विराट् रूप का प्रकट दर्शन किया। जब देखा कि उनकी महिमा का तो कुछ वार ही पार नहीं है—अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश उनकी स्तुति कर रहे हैं, तब बहुत कुछ शर्मिन्दा हो शिव जी के पास चली आईं। परन्तु सर्वज्ञ शिव जी भगवान् की प्रिय भार्या होते हुए, सब कुछ सुन समझ के निज अंतरी नेत्रों द्वारा उन सगुण अवतारी श्रीरामचन्द्र जी के महान् प्रभावशाली विश्व रूप के दर्शन करने पर भी सती जी को, उपरोक्त भ्रम सन्देह का समूल नाशक और दृढ़ निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हुआ क्योंकि जब दूसरे जन्म में उन्होंने पार्वती जी का शरीर पाकर शिव जी से ब्याह किया और उनके यहाँ आईं तब परमार्थी बातचीत के समय एकान्त में शिव जी से वही पूर्वोक्त सन्देहजनक प्रश्न फिर भी इस प्रकार नीचे की चौपाई से किया है कि········

चौपाई ॥

तुम पुनि राम नाम दिन राती। सादर जपहु अनंग आराती ॥
राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुण अलख गति कोई ॥

दोहा—जो नृप तनय तो ब्रह्म किमि, नारि विरह मति भोर।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोर ॥

चौपाई ।

जो अनीह व्यापक प्रभु कोऊ। कहहु बुझाय नाथ मोहि सोऊ ॥
अज्ञ जान रिस जनि उर धरहू। जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू ॥
मैं बन दीख राम प्रभुताई। अति भय विकल न तुमहिं सुनाई ॥
तदपि मलिन मन बोध न आवा। सो फल भली भाँति मैं पावा ॥

इत्यादि रूप से ऊपर के हमारे सारे लेख को पढ़ कर पार्वती के अन्तर का हाल अब सब किसी को भली भाँति आसानी से ही ज्ञात हो गया होगा कि अवतारी सगुण स्वरूप श्री रामचन्द्र जी का यथार्थ यानी संशय विपर्यय से रहित ज्ञान पार्वती जी को सब बातों की सुविधा होते हुए भी आसानी से नहीं हुआ था।

दूसरा दृष्टान्त नारद जी का ।

इसके बाद तुलसी कृत रामायण में सतीजी के प्रसंग के आगे नारद जी के लिखे हुए प्रसंग को भी सुनिये और अपना संशय दूर कीजिये। पूर्वोक्त सगुण अवतारों की पहिचान न होने की पुष्टि में इन ऋषि जी का दृष्टांत बहुत अच्छी तरह पूरा उतरता है। देखिये कि चारों ही वेद छःहू शास्त्र और अठारहों

पुराण इतिहास व व्याकरण आदि सभी विद्याओं के पूरे और स्वयंभू ब्रह्माजी के साक्षात् पुत्र पुराने जमाने के नारद ऋषि जी का हाल किसी से छिपा नहीं है। एक समय जब वह घूमते हुए किसी जंगल में समाधिस्थ हुए तब काम ने उनके ऊपर अपनी सेना समेत आक्रमण किया मगर निज तन, मन, इन्द्रियों के संयम रूप बाण से ऋषि जी ने कामदेव को तो पराजित कर दिया लेकिन जब उस आध्यात्मिक युद्ध के जय का उनके अन्दर बड़ा भारी अहंकार पैदा हो गया तब उसके जड़ समेत दूर करने के लिये उनके इष्ट देव विष्णु भगवान ने निज लीला रचित जो मायिक प्रपंच रचा उसको देखकर ऋषि जी कामदेव के शिकार ऐसे बन गये कि कुछ भी होश हवास नहीं रहा। वह प्रसंग यह है कि एक समय नारद जी विचरते हुए अकस्मात् किसी वन उपवन समेत महा रमणीक नगर के पास जा पहुँचे। वहां के राजा की लड़की का स्वयंवर होने के वास्ते देश देशान्तर के राजाओं का बड़ा भारी एक मेला सा जुड़ा हुआ था उसको देखकर ऋषि ने नगर के राजा के यहां जाकर सारा हाल पूछा और जब उस विश्व-मोहिनी कुमारी के रूप को देखा और उसके गुण व लक्षण पहि-चाने तो नारद जी उसके प्रभावशाली रूप पर मोहित हो मन ही मन में यह संकल्प विकल्प करने लगे कि कोई ऐसा उपाय हो कि जिससे यह राजकुमारी हमको वरे और इससे विवाह होकर हमेशा ही यह हमारे संग रहे लेकिन इसकी प्राप्ति के वास्ते परम सुन्दर रूप की जरूरत है जोकि मेरे परम प्यारे विष्णु भगवान् के पास है जिनके समान दुनिया में किसी का सुन्दर रूप नहीं है।

इससे मैं उन्हीं से जाकर याचना करूँ तो ज़रूर ही मेरी कामना जल्दी पूरी हो सकती है। ऐसा इरादा कर जब नारद जी विष्णु भगवान् के पास को चले तो रास्ते में ही उनको दर्शन हो गये और अपनी सब मनोविथा सुनाकर विष्णु भगवान् से सुन्दर रूप की नीचे लिखी हुई कड़ी के अनुसार याचना की।

चौपाई।

जेहि विधि नाथ होय हित मोरा। करहु सुवेग दास मैं तोरा॥

तब ऐसा सुनकर विष्णु भगवान् ने ऋषि जी के चित्त का सारा हाल निज अनुभव से जानकर उनके विकार को जड़ समेत खोने के वास्ते नीचे लिखे हुए दिलासा युक्त वचन कहे।

चौपाई।

निज माया बल देखि विशाला। हिय हँसि बोले दीन दयाला॥

दोहा—जेहि विधि होइ है परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार॥

चौपाई।

कुपथ मांगु रुज व्याकुल रोगी। वैद्य न देइ सुनहु मुनि योगी॥
इहि विधि हित तुम्हार मैं ठयेऊ। असकहि अन्तरहित प्रभु भयेऊ॥

इत्यादि रूप से विष्णु महाराज ने हंसकर नारद जी को चेताने के लिये इशारेदार कुछ वचन कहे भी हैं मगर इस

चौपाई

माया विवश भये मुनि मूढ़ा। समझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥

के अर्थानुसार ऋषि जी को निज प्रबल कामना के नशे में मस्त होने से विष्णु भगवान् के कहने सुनने का कुछ भी असर या बोध नहीं हुआ। तब फिर हरि जी ने उनके प्रबल रोग को समूल खोने के वास्ते इधर उधर की बातों से टाल दिया और माया-रचित उस विश्वमोहिनी राजकुमारी के स्वयंवर में पहुँचे। और आप ही राजवेष में होकर उसे वर लिया यह चरित्र देख नारद जी निज इच्छा अपूर्ण होने से उपजी हुई क्रोधाग्नि में जलते भुनते हुए वहाँ से भागे और रास्ते में आगे चल कर जब उन्होंने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी और उस राजकुमारी को साथ में लिये जाते हुए देखा तो उनके अन्दर क्रोध का प्रचंड धुआँ उठने लगा लेकिन इसी बीच में उनसे विष्णु भगवान् ही अपनी तरफ़ से यह बोले कि:—

चौपाई।

बोले वचन मधुर सुर साईं। मुनि कहँ चले विकल की नाईं॥

इत्यादि रूप से निज इष्ट देव विष्णु भगवान् के वाक्यों ने नारद जी की क्रोधाग्नि को घृत की आहुति के समान और भी प्रचंड कर दिया जिससे नीचे लिखे हुए वाक्य कुवाक्य रूपीतिलंगे उनके मुख से निकलने लगे जैसे कि:—

चौपाई।

सुनत वचन उपजा अति क्रोधा। माया वस न रहा मन बोधा॥

इत्यादि रूप से नारद जी महा अज्ञानजन्य घोर भ्रम में पड़कर उस वक्त सब कुछ भूल गये और निज इष्ट देव विष्णु महाराज से निम्नोक्त उलहाने के वचन कहने लगे जैसे कि:—

चौपाई ।

पर संपदा सकहु नहिं देखी । तुम्हरे ईर्षा कपट विशेषी ।।
मथत सिंधु रुद्रहिं बौरायेउ । सुरनि प्रेरि विष पान करायेउ ।।
दोहा—असुर सुरा विष शंकरहिं, आपु रमा मणि चारु ।
स्वारथ साधक कुटिल तुम, सदा कपट व्यौहारु ।।

इत्यादि रूप से ऋषि जी ने और भी अनेक भांति का उलटा सीधा सुनाकर विष्णु भगवान् को श्राप तक देने में भी कसर नहीं रक्खी अर्थात् उस वक्त, किंचिन्मात्र भी कोई विचार नारदजी को अनेकों बार दर्शन किये हुए निज इष्ट देव विष्णु जी के स्वरूप की निस्वत नहीं रहा, हरचंद पीछे बहुत, झुरे पछताए भी हैं लेकिन उस समय निज प्रबल कामना के भंग होने से पैदा हुए क्रोध रूप निशाचर के वश उन हरि भगवान् की कुछ भी परख पहिचान नहीं रही । इससे अब इतर लोगों को सबक़ लेना चाहिये कि जब नारद सरीखे विद्वान् और प्रेमी भक्त योगियों को ऐसे पवित्र समय में उपरोक्त ऐसे ऐसे धोखे होजाते थे यानी ऐसी महान् व्यक्तियाँ भी विकारों के वश हो पुराने ज़माने में सब कुछ जान बूझकर धोखा खा जाती थीं तब हम लोग आज कल जो बिना देखे भाले व्यापक भगवान् के या सगुण अवतारों के वाचक प्रेमी बनते हैं यानी भक्ति व ज्ञान के हम सिर्फ़ बातों से ही हानि लाभ के व्यापारी हैं । मगर असल में अंदर में अभी कुछ भी तजरुबा नहीं है । ऐसे लोगों को सोचना चाहिये कि जब उन पांचों प्रबल विकारों में से एक कामदेव ने ही प्रकट होकर नारद से तपस्वी संयमी का भी सब कुछ भुला व रद्द कराकर यह हाल

करा दिया तब हम सरीखे इस वक़्त के मामूली जीवों या बड़े बड़े विद्वान् पंडितों का जिन्हों की शुमार सच पूछो तो उन पुराने ऋषियों के मुक़ाबिले में महा मूर्खों की ही गिनती में है, किसी मौजूदा सच्चे सगुण अवतार की परख पहिचान हो जाने की क्या आशा है। बल्कि यह बिल्कुल ना मुमकिन है क्योंकि पहले तो अब महा मलिन कलिकाल का समय है। दूसरे मन माया और काल-कर्म-जनित अनेक आपदाओं की और अनंत आशा वासनाओं की रस्सियों से हर एक जीव की बुद्धि (चाहे कोई पट् शास्त्री हो चाहे कोई बिल्कुल महामूर्ख निरक्षर भट्टाचार्य हो) जकड़ी हुई है। तीसरे काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि इन महा प्रबल विकारी भूत और जिन्नों से यहाँ पर हर एक का मन (संसारी हो या परमार्थी) दिन रात दीन भिखारियों की तरह इधर उधर धक्के खा रहा है। तब उक्त प्रकार के विघ्नकारी कारणों के सब किसी के अंदर होते हुए किस तरह किसी सच्चे साधु संत व योगी महात्मा और अवतरित महापुरुष की एकाएक इन लोगों को वर्तमान काल में असली परख पहिचान हो सकती है अर्थात् हर्गिज़ भी महान् गन्दे मन बुद्धि वाले इन जीवों के वश की यह बात नहीं है। इसमें कारण गुसाईं जी के पूर्वोक्त दोहे की निचली कड़ी से प्रकट किया हुआ भावार्थ ही यहाँ पर श्रोतागणों को समझ लेना चाहिये यानी जैसे कि पुराने ज़माने के अवतरित महापुरुषों के सुगम अगम चरित्रों को देख सुनकर प्राचीन ऋषि, मुनि, भक्तजन भ्रांत हो जाते थे तैसे ही इस वक़्त के अवतारी कामिल पुरुष भी उसी प्रकार के सुगम

अगम मुनि मन मोहकारी चरित्र इस नर—चोले को धारण कर कमी बेशी के साथ निसंगता से यहाँ पर जरूर ही कर रहे हैं। तब ये इस कलिकाल के जीव जो कि निहायत नीचे घाट पर उतर कर हमेशा तन मन इन्द्रियों के मुतल्लिक़ पोषणार्थ स्थावर जंगम रूप पदार्थों के मोह में चौबीसौ घंटे घूमते रहते हैं अर्थात् जिन्हों की मन इन्द्रियाँ किसान की तरह नाथे हुए बैल की भाँति हर दम उन्हें नाना नांच नचा रही हैं और यह बिल्कुल भी नहीं समझते हैं कि सच्चा परमार्थ क्या है यानी वह किस वृक्ष का मीठा या कड़ुआ फल है या किस वृक्ष की चिड़िया के घोंसले का बच्चा है। ऐसे जो मन माया के नीच ग़ुलाम आजकल के तुच्छ विचारों वाले मनुष्य हैं वह निज महा मलिन इस भौतिक बुद्धि से ही वक़्त के किसी सच्चे संत सद्गुरुओं की (पुराने अवतारों के जो पहले कारनामे व सिद्धि शक्तियाँ हैं उनसे बिल्कुल अन-भिज्ञ होते हुए) पहिले परख पहिचान करना चाहते हैं तब महापुरुषों की शरण इख्त्यिार करने के जो ख्याली हैं यानी उपरोक्त प्रकार का ख्याल अंतर में किये बैठे हैं सो यह क्या कम आश्चर्य की बात है अर्थात् यह बहुत ही ताज्जुब मालूम होता है जैसे कि किसी मच्छर का आकाश की नाप तोल के लिए कमर कसना सो भला यह किसी मतिमान की अक़्ल में कैसे आ सकता है अर्थात् जैसे यह बिल्कुल नामुमकिन मामला है तैसे ही महापुरुषों या सच्चे संत सद्गुरु की असलियत की जानकारी में भी हर एक मनुष्य को ऐसा ही ख्याल कर लेना चाहिये।

तीसरा दृष्टान्त विश्वामित्र जी का ।

इसके बाद महान् तपस्वी विश्वामित्र जी का भी थोड़ा सा हाल मिसाल के तौर पर उन प्राचीन अवतारों की परख के भूल भ्रम में सुनिये क्योंकि ये ऋषि जी भी त्रेता आदि से पवित्र समय में श्री रामचन्द्रजी की निस्वत पहिले ज्ञात ज्ञेय होकर ही फिर उनके चरित्रों से कुछ कुछ भूल भ्रम में आ गये हैं हरचंद उन्हें श्री रामचंद्रजी का अनुपम बाल्य पराक्रम (कुटुम्ब सहित ताड़का राक्षसी का वध) जल्दी ही होशहवास में ले आया है लेकिन पहिले कुछ देर के लिये ऋषि जी भी गुसाईं जी के आदि में कहे हुए उस दोहे के भावार्थ के शिकार हो ही गये। वास्तव में इनकी प्राचीन कथा पाठकों की जानकारी के लिये संक्षेप में तो यह है कि उस वक्त जप तप करते हुए उन्होंने कुछ काल से यह सुन रक्खा था कि दुष्टों के नाश और साधुओं के धर्म-संरक्षण के लिये अयोध्या में अवतार होगया है और हम इस वक्त उस दुष्ट ताड़का राक्षसी समेत उसके पुत्र सुबाहु मारीचादि से सताये जा रहे हैं क्योंकि ये पापी राक्षस रोजाना हमारे शुभ कर्म में किसी न किसी प्रकार से बाधा डालते ही रहते हैं और भगवान् ऐसे ही खलों को समूल नाश करने व सुधारने के वास्ते इस पृथ्वी पर अवतरे हैं इसलिये इस समय अयोध्या जाकर उनसे अपनी व्यथा जरूर अर्ज कर देनी चाहिये। इस बहाने से उनके दर्शन भी हमको हो जायँगे और ये दुष्ट राक्षस भी उनके ही हाथ से मारे जा सकते हैं। अन्य कोई सूरत इनके

वध की नहीं है। अगर दया हो गई तो ज्ञान वैराग्य और सम्पूर्ण शुभ गुणों के भंडार निज प्रभु को यहाँ लाकर अपनी इस आधिभौतिक ताप से हम जरूर ही छुटकारा पाकर उनके दर्शन का लाभ और अति आनन्द पायेंगे। ऐसा शोच विचार कर के ये ऋषि विश्वामित्र जी निज आश्रम से चल दिये और रास्ते का श्रम झेलते हुए अयोध्या में पहुँच कर राजा दशरथ के दरबार में जा उपस्थित हुए। तब राजा दशरथ ने उनको देखते ही उठ कर सविनय हाथ जोड़ दंड प्रणाम करके कुशलक्षेम पूछा। इस पर ऋषि जी ने अपनी सारी व्यथा कह सुनाई और उसके दूर करने के लिये श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी को माँगा जिसे सुन कर पहिले तो राजा ने पुत्रों के मोहवश उनके देने में कुछ आना कानी सी भी की मगर गुरु वशिष्ट जी के समझाने बुझाने पर निम्नोक्त प्रकार से दोनों राजकुमार विश्वामित्र जी के साथ कर ही दिये:—

चौपाई।

तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ। मेरे प्राण नाथ सुत दोऊ॥

इत्यादि रूप से कह कर निज पुत्र श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी ऋषि जी को सौंप दिये हैं। इस तरह उपरोक्त प्रकार से ऋषि जी के मन का हाल पाठकों की जानकारी के लिये दो चौपाइयों से ज्ञात कराते हैं—

चौपाई।

गाधि तनय मन चिन्ता व्यापी। हरि बिन मरहिं न निश्चर पापी॥१

तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरण महि भारा॥१

इहि मिस देखौं प्रभु पद जाई। करि विनती आनहुँ दोउ भाई ॥
ज्ञान विराग सकल गुण अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ॥

इत्यादि रूप से ऋषि जी ने प्रथम तो श्री रामचन्द्र जी को पूर्ण सगुण अवतार समझ कर निज इष्टदेव भगवान् ही निश्चय किया है लेकिन फिर वही उपरोक्त ज्ञानवान् विश्वामित्र जी श्री रामचन्द्रजी के मामूली बालकों के से सुन्दर स्वभाव व मीठी बोल चाल और खान पान उठन बैठन व्यवहार बर्ताव रूप सुगम चरित्रों को संग में रह कर देख देख व सुन सुन कर के कुछ कुछ भ्रम और सन्देह में पड़ जाते भये हर चन्द इस बात के सबूत में कोई कड़ी वहाँ पर गुसाईं तुलसीदास जी ने नहीं लिखी है लेकिन निम्नोक्त कड़ी के होने से ऋषि जी के अन्दर के भ्रम का साफ़ साफ़ पता चलता है। तात्पर्य यह है कि जब विश्वामित्र जी उन दोनों राजकुमारों के संग में चले जाते थे तब श्री रामचन्द्र जी ने कौतुक से ही उस ताड़का राक्षसी का एक ही बान में प्राणान्त कर दिया तो इस चरित को देख कर ऋषि जी को अन्दर में यह पका निश्चय हो गया कि ज़रूर ही यह कोई अवतारी महापुरुष हैं और इस खुशी के एवज़ में उनको अपनी तरफ़ से कुछ बाण-विद्या का दान भी ऋषि जी ने दिया यानी उन दोनों राजकुमारों को राजनैतिक विद्या भी सिखाई जैसा कि इन कड़ियों में गुसाईं जी ने कहा है:—

चौपाई ।

तब ऋषि निज नाथहिं जिय चीन्हा । विद्यानिधि को विद्या दीन्हा ॥
जाते लगे न छुधा पिपासा । अतुलित बल तनु तेज प्रकाशा ॥

इत्यादि रूप से ऊपर की कड़ी को पढ़ने से प्रकट पता चलता है कि इन ऋषि जी को भी कुछ कुछ अवतारसम्बन्धी सन्देह का शिकार होना पड़ा है:—

चौथा दृष्टान्त राजा जनक जी का

इसके बाद इसी मामले में सब से अव्वल परमार्थी बल्कि ब्रह्मदर्शी विदेह जनक राज को ही दृष्टान्त के तौर पर लेते हैं और इसी प्रसंग के अन्त में अवतारों ही की गिनती के पूर्ण कर्त्ता खुद परशुराम जी का भी हाल सुनायेंगे कि ये दोनों महापुरुष भी अपने वक़्त की सच्ची सगुण मूर्त्तियों की असली परख पहिचान, दर्शन करते हुए भी न कर सके—और दूसरों के समझाने बुझाने से पहिले सगुण ब्रह्मत्व का निश्चय करके भी पीछे भूल भ्रम के शिकार बन गये । राजा जनक की विशेष गाथा यह है कि विश्वामित्र ऋषि जी सुबाहु मारीचादि राक्षसों से (जोकि उनकी हर एक शुभ क्रिया में विघ्न डालते थे) निश्चिन्त हो अन्य ब्राह्मणों समेत श्री राम लक्ष्मण को साथ ले जब जनकपुरी में (सीय स्वयंवर देखने के लिये पहुँचे) तब जनक जी इनकी खबर पाकर स्वागत करने के वास्ते आये और जब सामने हुए तब अति नम्र भाव से दोनों हाथ जोड़ कर दंड प्रणाम किया और परस्पर

कुशलक्षेम पूछ कर सबके संग प्रसन्नतापूर्वक बैठते ही जाते थे कि इतने में दोनों राजकुमार श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण जी भी आ पहुँचे क्योंकि वह दोनों जनक जी के आने से पहिले ऋषि जी से आज्ञा ले बगीचा की सैर करने को निकल गये थे सो जब ये दोनों आये तो सब किसी की दृष्टि इनके ऊपर पड़ी यानी इन्हीं को देखा तो सबके सब, जो वहाँ मौजूद थे, इनके स्वागतार्थ एक दम खड़े हो गये जैसा कि नीचे की कड़ी कहती है—

कड़ी—उठे सबहि जब रघुपति आए। विश्वामित्र निकट बैठाये॥

इत्यादि रूप से जब सबका स्वागत हो चुका तो ऋषि जी ने उन दोनों को पास बुला कर निज आसन पर ही बैठा लिया। सब किसी ने इनको देख कर बड़ा आनन्द पाया और राजा जनक तो श्री रामचन्द्र जी की अत्यन्त सुशोभित और मनोहर मूर्त्ति का सामने दर्शन कर कुछ तो पहले ही विदेह थे बल्कि यह और भी उनके अलौकिक शोभायमान सौम्य रूप ने (निम्नोक्त कड़ी के अनुसार) उनको और ज्यादा विदेह बना दिया—

चौपाई।

भये सब सुखी देख दोऊ भ्राता। वारि विलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेऊ विदेह विदेह विशेषी॥

इत्यादि रूप से श्री रामचन्द्र जी के स्वरूप की मगनता से होशहवास में आकर फिर राजा जनक विश्वामित्र जी से अपने मन का हाल कहते हुए सविनय यह पूछने लगे हैं कि हे प्रभो! यह दोनों बालक कौन हैं और किस घर में पैदा हुए हैं यानी

किसी मुनीश्वर के कुल के तिलक अर्थात सुशोभितकर्त्ता हैं या किसी राजकुल के पालन करने वाले हैं या निचली कड़ी अनुसार वेद ने जिस निर्गुण ब्रह्म को नेति नेति करके बोध न किया है सो कहीं वही तो नहीं दो मूर्त्ति धारण करके आ प्रकट हुआ है :—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभयवेष धरि सोइ कि आवा॥

इत्यादि रूप से आप सच सच कहिये कि यह क्या मामला है क्योंकि "सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द्र चकोरा॥" इत्यादि रूप से मेरे मन का हमेशा यह हाल रहता है कि किसी दुनियवी वस्तु की सुन्दरता इसको कभी लुभा नहीं सकती यानी ऐसा नहीं है कि दूसरे प्राकृत जीवों की तरह कोई जड़ चेतन रूप स्थावर जंगम वस्तु अपने सौन्दर्य से मेरे चित्त को ज़बरदस्ती से खींच कर निज तरफ़ लगा ले सो हर्गिज़ भी कभी नहीं लुभा सकती क्योंकि मुझे ब्रह्मदर्शन हमेशा हस्तामलकवत् रहने से इस संसार की तरफ़ से क्षण परिणामित्व का दृढ़ बोध होकर हमेशा स्वाभाविक सच्चा वैराग्य बना रहता है। लेकिन आज इन दोनों कुँवरों को देख कर इनकी सुन्दरता ने मेरे नेत्रों को चन्द्र चकोर की तरह हर लिया है और निचली कड़ी मुताबिक़ मन का ऐसा हाल हो रहा है कि...............।

इनहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा॥

इस प्रकार इनके ज़ाहिरी रूप से मन ऐसा प्रेमाकुल हो रहा है कि उसने ब्रह्मानन्द को भी भुला दिया है। सो हे! प्रभो मैं आप से बिल्कुल निष्कपट भाव से सच पूछता हूँ कि कहीं ये

उसी निर्गुण ब्रह्म के ही अवतार तो नहीं हैं। आप मुझ से कुछ छिपाव न करके सत्य सत्य कह दीजिये। इस प्रकार से राजा जनक का सारा कहना सुन कर विश्वामित्र जी भी निम्नोक्त कड़ी अनुसार हँस कर यह कहने लगे कि........................।

कह मुनि बिहँसि कहेऊ नृप नीका। वचन तुम्हार न होय अलीका॥
ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी। मन मुसकाहिं राम सुनि बानी॥

इत्यादि रूप से ऋषि जी ने कहा कि हे राजा जनक! तुम्हारा कहना कुछ भी झूठ नहीं है बल्कि नितान्त सत्य है। ये उसी निराकार, निरवयव, निर्गुण ब्रह्म के सच्चे सगुण अवतार हैं जिसमें कि तुम्हारा सहज वैराग्यवान् मन हमेशा लगा रहता है और हे राजन्! ये चराचर संसार के प्राणीमात्र के निज परम प्रिय आत्मा होने से सच सच ब्रह्मदेव ही हैं इसमें रंचक मात्र भी झूठ न समझिये। इस प्रकार विश्वामित्र जी ने राजा से साफ़ साफ़ कह दिया कि ये उसी निर्गुण ब्रह्म के सच्चे सगुणावतार हैं जिसका कि आप ध्यान की हालत में अंतर में दर्शन करते हैं और राजा ने विना चूँचरा के मान भी लिया कि ये जरूर वह ही हैं। मगर फिर देखिये भगवान् की लीला को कि वे ही राजा जनक जब कि स्वयंवर में श्री रामचन्द्र जी समेत सब राजा इकट्ठे हुए और धनुष तोड़ने की निस्बत अनेक भाँति से अपने अपने बल बखान करने लगे और सबने धनुष को आजमाया लेकिन जब वह किसी से हिला तक भी नहीं और विश्वामित्र ऋषि सहित श्री रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी भी वहीं चुप चाप एक ऊँचे आसन पर

विराजते रहे तव धनुष-भंग होने में असफलता के कारण राजा जनक जी अति निराश हो निज इच्छा की अपूर्ति के कारण बहुत कुछ घवड़ा गये और श्री रामचन्द्र जी की निस्बत जो निज अन्दर में पहिले विज्ञात करी हुई ऋपि उक्त प्रभुता या सर्वसमर्थता थी उसको एक दम भुला दिया और उसी स्वयंवर में खड़े हो कर ऊँचे स्वर से सवकी तरफ़ मुख़ातिब हो निम्नोक्त कड़ियों के अनुसार ये वाक्य कहने लगे—

अव जनि कोऊ माषे भट मानी। वीर विहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाऊ। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू॥
सुकृत जाय जो प्रण परिहरहूँ। कुमरि कुँवारि रहे क्या करहूँ॥
जौ जनतेउ विनु भट महि भाई। तौ प्रण करि करत्यों न हँसाई॥

जनक राजा के इस प्रकार के कथन से अब पाठक ही निज अन्दर में विचार देखें यानी जब सब राजाओं का समूह वैठा है और ऋपि विश्वामित्र जी सहित ब्रह्म के अवतार श्री रामचन्द्र जी भी वहाँ मौजूद हैं तो उपरोक्त प्रकार से राजा का यह कहना साबित करता है कि इस वक़्त उनको वह विश्वामित्र जी का समझाया हुआ ज्ञान नहीं रहा क्योंकि ऐसे वचन मुनि के कहे हुए उपरोक्त यथार्थ ज्ञान व श्री रामचन्द्र जी के स्वरूप और प्रताप को पीठ देकर यानी भूलकर ही राजा के मुँह से निकल सकते हैं क्योंकि जो राजा के वही उपरोक्त कड़ी वाला ऐसा वोध रहता कि—(ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभयवेष धरि सोइ कि आवा) तो भला इस प्रकार कहने का साहस कैसे

पड़ता कि अब कोई भी शूरवीर अपने क्षत्रियपन का आज से घमण्ड न करे मैंने तो सारी पृथ्वी वीर विहीन समझ ली है और कोई योधा अब संसार भर में नहीं है। इससे अब आप लोग सबके सब अपनी अपनी आशाओं को जो कि जानकी से व्याह हो जाने के वास्ते घर से ले कर आये थे, त्याग के अपने अपने घर लौट जाओ क्योंकि सीता जी से विवाह होना ब्रह्मा जी ने आप लोगों की क़िस्मत में नहीं लिखा है। ऐसा जो राजा जनक का कहना है वह श्री रामचन्द्र जी के वास्तविकस्वरूप की अज्ञानता के कारण ही है। इसी वास्ते लक्ष्मण जी ने निहायत क्रोधायमान नेत्रों की दृष्टि से राजा की तरफ़ देख कर उनकी अज्ञानता के सूचक दांत पीस कर व होंठ चबा कर यह वचन कहे हैं:—

चौपाई।

माखे लखन कुटिल भइ भौंहें। रद पुट फरकत नयन रिसौंहें॥
रघुवंसिन में जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहहि न कोई॥
कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल मणि जानी॥

इस प्रकार से उस वक्त, लक्ष्मणजी ने राजा जनक को दबाने औरउपरोक्त प्रकार से होश हवास दिला कर उसी समझ बूझ के घाट पर लाने के वास्ते अहंकारपूर्वक बहुत से वचन कहे हैं। ऐसे रोषयुक्त वाक्य ऊँचे स्वर से कहे हैं कि जिनका असर वहाँ पर उपस्थित सब राजाओं और जनक पर निम्नोक्त कड़ियों मुताबिक़ हुआ है—

चौपाई ।

लषण सकोप वचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥
सकल लोक सब भूप डराने । सिय हिय हर्ष जनक सकुचाने ॥

इस तरह पर लक्ष्मण जी के वाक्यों से विदित हुई अपनी भूल का स्मरण करके राजा जनक बहुत सकुच जाते भए और शर्म से नीचे को आँखें कर लीं । अब ऊपर से ले कर नीचे तक इस वृत्तान्त को पाठक गौर से विचारें और हमने जो अवतारों की परख पहिचान हर एक परमार्थी को भी यकायक न होने में पुराने ज़माने के सबसे अव्वल परमार्थी राजा जनक को दृष्टान्त के तौर पर लिया है उनके ऊपर के कहने और फिर निज भूल में सकुचने व शर्म खाने से तो बड़ी आसानी से यह सब किसी को विदित हो जाता है कि उन्होंने उपरोक्त कड़ियों के अनुसार जो जो वचन कहे वह श्री रामचन्द्र जी के सच्चे सगुण स्वरूप को भूल कर ही मुख से निकाले थे । अगर जो राजा को उस वक़्त श्री रामचन्द्र जी के अवतरित होने का ठीक ठीक ज्ञान अन्दर में रहता तो क्यों उपरोक्त प्रकार से एक दम सबके साथ में उनके भी अपमान और न्यूनतासूचक वचन कहते यानी सभा के बीच में सबके सामने सर्व राजाओं की बलहीनता में श्री रामचन्द्र जी को भी उन्होंने निज कहनि में शामिल किया है और फ़िर लक्ष्मण जी के वचन सुन कर बोध होने से अपनी अनुचित कहनि पर झुरे पछताए हैं । इस से यही ज्ञात होता है किसब से अव्वल दर्जे के परमार्थी और सच्ची रहनि गहनि वाले राजा जनक कोभी

अवतार स्वरूप श्री रामचन्द्र जी की निस्बत उसी आदि के दोहे की निचली कड़ी वाला मुनि मन मोहकारी भ्रम होता हुआ यानी सुगम अगम चरित्रों में भूल कर यथार्थ बोध नहीं रहा लेकिन जब श्री रामचन्द्र जी ने निज बल से धनुष को तोड़ दिया और जानकी जी से व्याह हो जाने पर बिदा होकर घर को चले तब जनक जी राजा दशरथ को पहुँचाने के वास्ते कुछ दूर संग संग गये। पीछे लौटते वक्त, जब श्री रामचन्द्र जी की तरफ़ मुख़ातिब हुए तब उन्हीं राजा जनक ने उसी निर्गुण ब्रह्म के सगुणावतार समझ कर प्रार्थना की है यानी बहुत नम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़ कर चित्त से उसी निगम नेति ब्रह्म को स्मरण में ला कर श्री रामचन्द्र जी की परब्रह्म भाव से निम्नोक्त कड़ियों अनुसार अपनी सच्ची विज्ञता-सूचक विनती इस प्रकार से की है.........।

चौपाई।

जोरि पंकरुह पाणि सुहाये। बोले बचन प्रेम जनु जाये॥
राम करहुँ केहि भाँति प्रशंसा। मुनि महेश मन मानस हंसा॥
करहिं योग योगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥
व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी। चिदानन्द निर्गुण गुणराशी॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तर्क न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगम नेति कर कहहीं। सो तिहुँ काल एक रस रहहीं॥

दोहा—नयन विषय मोकहँ भयेउ, जो समस्त सुख मूल।
सबहिं लाभ जग जीव कहँ, भए ईश अनुकूल॥

इत्यादि रूप से जनक जी की यह जो स्तुति है सो अब उसी रूप को यथार्थ बोध करा रही है जिसकी निस्बत पहिले यह कहते थे कि............................।

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय भेष धरि सोई कि आवा ॥

अब समझना चाहिये कि राजा को सच्चा ज्ञान इस वक्त हुआ है और अब उस वक्त के दूसरे राजाओं के हाल को तो क्या लिखें । सब किसी को ज्ञात ही है कि उस त्रेतादि से पवित्र समय में भी बहुत से राजा श्री रामचन्द्र जी को अपने समान प्राकृत संसारी जीव ही ख्याल करते थे यानी उनकी प्रभुता व सगुण ब्रह्मता का उनको रंचक मात्र भी अन्दर में सब कुछ देखते भालते व सुनते सुनाते हुए भी बोध नहीं था । इसी वास्ते उन्होंने धनुप के टूटने पर भी वहीं बैठे हुए सब किसी के सामने अपनी महा मूर्खता के जनाने हारे ऐसे ऐसे वाक्य कुवाक्य श्री रामचन्द्र जी को सुना कर कहे हैं कि............।

चौपाई ।

तोरे धनुप काज नहिं सरही । जीवत हमहिं कुँवरि को वर ही ॥
लेउ छुड़ाय सीय कहँ कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥

इस प्रकार से उस वक्त श्री रामचन्द्र जी के सगुण स्वरूप की परख न होने के सबब से ही उन राजाओं के मुख से ये उक्त वाक्य निकले थे । नहीं तो कुछ भी अगर अन्दर में समझ होती तो क्यों मुँह फाड़ ऐसे बेढंगे वचन बोलते । इससे श्रोतागणों को जनक जी के सारे वृत्तान्त से यह सार अर्थ अपने ज़हन में धर लेना चाहिये कि जब प्राचीन काल में जनक सरीखे विद्वान्

ब्रह्मवेत्ता भी अपने समय के सगुण अवतारों की सच्ची परख पहिचान में उक्त प्रकार से नाक़ाबिल थे और उन अवतारों के उस वक़्त, दर्शन करके, वचन वार्ता सुन के और सत्संग करके जानकार हो कर भी जब भ्रम सन्देहों में पड़ कर सब कुछ भूल गये तब इस वक़्त, कलिकाल के जो सब तरह से अल्पज्ञ और अज्ञानी मूर्ख जीव हैं या ज़ाहिरी विद्या बुद्धि के भण्डार जो पढ़े पण्डित हैं तिनको निज अन्दर में ज़रा सोचना चाहिये कि गुज़रे ज़माने के उन सगुण स्वरूप राम कृष्णादि कामिल पुरुषों की ग़ैरमौजूदगी में जो हम लोग इस वक़्त, उनके नक़ली पक्षपाती बन कर मुख से यह कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म का जानना और प्राप्त होना तो बड़ा कठिन है। हम को तो एक सगुण स्वरूप ही सुलभ मालूम होता है और यही हमें परम प्रिय है ऐसे लोगों से हमारा यह कहना है कि तुम अभी किसी के प्रेमी नहीं हो, निर्गुण की प्राप्ति तो तुम निज मुख से कठिन कहते ही हो और असल में उसका दर्शन है भी दुर्लभ। मगर तुम जो इन धातु, काष्ठ पत्थर की मूर्त्तियों के पक्षपाती व टेकी बन पुराने ज़माने के गये गुज़रे हुए उन राम कृष्णादि सगुण अवतारों के अपने मन से ख़्याली सगुण उपासक बन रहे हो और अवतारों के शरीर को ही आप लोग सगुण ब्रह्म मान बैठे हो सो ज़रा मिहरबानी करके उपरोक्त प्रकार से लिखे हुए आदि से अन्त तक इन राजा जनक के वृत्तान्त को ग़ौर से पढ़िये और निज अन्दर में अच्छी तरह विचारिये कि उस वक़्त, के राजा जनक भी, जो हम लोगों के मुक़ाबिले में सब तरह से महान् श्रेष्ठ थे, इस सगुण स्वरूप की

सभी भावकारी व जानकारी में किस तरह ग़लताँपेचाँ व खींचा-तानी में पड़े रहे हैं। अब ज्यादा क्या लिखें हमारी समझ से तो इस मामले में आजकल के बुद्धि के कंगले, आचार विचार से हीन, व्यवहार बर्ताव में गिरे हुए और काम, क्रोध, लोभ, मोहादि के भँवरों में मछली की तरह ग़ोते खाने वाले मतिमंद अभागे जीवों की क्या चलाई है। तपस्वियों के राजा और महाज्ञानी योगी अभ्यासी बल्कि चौबीस अवतारों की गिनती को ही पूर्ण करने वाले साक्षात् अवतारस्वरूप परशुराम जी की बुद्धि पर ही इस क़दर पर्दा पड़ गया था कि उस वक़्त उनको श्री रामचन्द्र जी की कुछ भी परख नहीं हुई।

पांचवाँ दृष्टांत परशुराम जी का

जिस वक़्त श्री रामचन्द्र जी महाराज ने धनुष को तोड़ दिया और परशुराम जी को धनुष के टूटने की मालूम होगई तब वह क्रोध में भरे हुए कंधे पर कुठार धरे बीच सभा में आखड़े हुए। जहाँ से सामने ही खड़े हुए श्री रामचन्द्र जी के दर्शन भी कर रहे थे परन्तु उस वक़्त यह कुछ भी बोध नहीं था कि आया ये साक्षात् निर्गुण ब्रह्म के अवतार सगुण स्वरूप कोई अलौकिक आत्मा हैं या मामूली जीव हैं। ऐसा निश्चयात्मक यथार्थ ज्ञान परशुराम जी को उस वक़्त दर्शन करते हुए भी नहीं हुआ। बल्कि और श्रीरामचन्द्र जी की निस्बत धनुष तोड़ने के वहम में क्रोध के वशीभूत हो अनेकों दुर्वचन लक्ष्मण जी समेत श्रीरामचन्द्र जी से

बड़ी देर तक खड़े हुए उस राजसभा में कहते रहे हैं। जब बहुत देर क्रोध में जलते भुनते हुए देखा कि इन दोनों भाइयों पर मेरी इस भड़क का कुछ भी असर नहीं पहुँचा और मेरा हाथ भी इनके ऊपर वार करने को नहीं उठता है तब श्री रामचन्द्रजी की गंभीरता भरी बातों को सुनकर बहुत देर के बाद होश हवास में आकर निचली कड़ियों के मुताबिक परीक्षार्थ दूसरा धनुष अपने पास से श्री रामचन्द्र जी के हाथ में देते भये हैं।

चौपाई।

सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुवर के। उघरे पटल परसुधर मतिके॥
राम रमापति कर धन लेहू। खैंचहु चाप मिटै संदेहू॥
देत चाप आपुहि चढ़ि गयेऊ। परसराम मन विसमय भयेऊ॥

दोहा:—जाना राम प्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात।
जोरि पाणि बोले वचन, प्रेम न हृदय समात॥

इस प्रकार से जब यह पूरा अन्दर में निश्चय होगया कि जिनको मैंने निज मूर्खता के कारण अनेकों उलटे सीधे दुर्वचन कहे थे ओहो वह तो साक्षात् पूर्ण ब्रह्म के अवतार कोई अलौकिक ही महापुरुष मालूम होते हैं। ऐसा जब पक्का निश्चय परशुराम जी के अन्दर हुआ तब तो अपने को बड़ा भारी पापी और अपराधी जानकर इससे बरी होने का उपाय अंतर में सोचने लगे। जब देखा कि सिवाय इनके पांव पकड़ने के और कोई सूरत इस दोष से रिहाई होने की नहीं है तो निम्नोक्त वाक्यों अनुसार निज अपराध क्षमा कराने के लिये बड़े ही दीन व नम्र हो दोनों हाथ बाँध कर इस तरह पर श्रीरामचन्द्र जी से प्रार्थना करते भए—

चौपाई।

करौं कहा मुख एक प्रशंसा। जय महेश मानस मन हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउ अज्ञाता। क्षमहु क्षमा मंदिर दोउ भ्राता॥

इत्यादि रूप से कहाँ तक लिखें परशुराम जी महा अज्ञान-जन्य अपनी पहिली मूर्खता की करतूत को निज अन्दर में धिक्कार देते हुए बड़े ही शर्मिंदा होकर बहुत ही पश्चात्ताप करने लगे हैं। पीछे फिर आज्ञा लेकर श्रीरामचन्द्र जी की जय जयकार बोलते हुए भृगुनाथ जी तप के कारण वन को चले गये। अब इस वृत्तान्त से निज अन्दर में हर एक परमार्थी जिज्ञासु को विचार लेना चाहिये कि परशुराम सरीखे महापुरुषों का प्राचीन काल में भी (सगुण अवतारों की असली जानकारी में) जब यह हाल रहा है जैसा कि ऊपर बयान हुआ है तब हम लोग आज कल अपने वक़्त के सगुण अवतार स्वरूप संत सद्गुरु की क्या जाँच परख कर सकते हैं। इस वास्ते इस झमेले में न पड़ते हुए हमको तो अपने कल्याण का सवाल उनसे हल कराना चाहिये बाक़ी और बातों से न हमें कुछ प्रयोजन है और न दर्याफ़्त करने कराने ही की हमें लियाक़त है तब क्यों व्यर्थ के बखेड़ों की अन्दर में पैदावारी करें। ऐसा सीधा ख्याल लेकर सच्चे प्रेमी को झट पट निज वक़्त के अवतारों की चरणशरण इख्तियार कर लेनी चाहिये। लेकिन इसके मानी यह भी नहीं है कि बिल्कुल मट्टी के माधों ही बन जिस किसी को अपना दामन पकड़ा दें। हमारा अभिप्राय तो यह है कि न तो आप किताबों की लिखी

हुई पुरानी बातों की रोशनी में वक्त के किसी सच्चे साधु संत की परख पहिचान करने का ही इरादा करें और न अपनी तुच्छ बुद्धि लड़ाकर व्यर्थ की कुतर्कबाजियाँ ही छाँटें और न अंध परंपरा के तौर पर भेड़ चाल को अंगीकार करके कहीं झट पट लिपट ही जावें।

छठवाँ दृष्टान्त हनुमान जी का।

इसी मामले में सब से अव्वल दर्जे के प्रेमी परमार्थी और तन मन इन्द्रियों के बहुत कुछ संयमी हनुमान जी को ही लीजिये। जो महावीर जी नौऊ व्याकरण, चारों वेद, छःओं शास्त्र और अठारह पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों के बड़े ही यथार्थ ज्ञाता और मालिक के परम प्रेमी भक्त थे। उन्हीं का वृत्तान्त हम पाठकों की नजर के सामने पेश करने का प्रयत्न करते हैं। विशेष वार्ता यह है कि श्रीरामचन्द्र जी निज भाई लक्ष्मण जी समेत जटायु और सवरी से सीता जी के हरण में कुछ ब्योरेवार पता पाकर सवरी के कहने मुताबिक़ जब पंपापुर में पहुँचे तो (सुग्रीव ने अपने मन में भय के कारण भेजे हुए) हनुमान जी से श्रीरामचन्द्र जी की पहिली मुलाक़ात हुई। उनका भेद लेने के लिये कपिजी ने तो अपना ब्रह्मचारी का वेष बना लिया था और ये दोनों भाई तीर कमान लिए हुये क्षत्रियों के वेष में थे ही। जब श्रीरामचन्द्र जी और हनुमान जी पास आ पहुँचे तो परस्पर एक दूसरे का पूछने लगे कि आप कौन हैं और कहाँ से अब पधारे हैं और

आगे अब कहाँ जाने का इरादा है ? ऐसा प्रश्न पहिले पहुँच कर हनुमान जी ने ही श्री रामचन्द्र जी से पूछा है। सच्ची झूठी की अन्तर्यामी जाने लेकिन रामायण के बालकांड की आदि से कुछ आगे चल कर एक क्षेपक कथा में यह ज़रूर ही लिखा देखा है कि श्रीरामचन्द्र जी की बाल दशा में हनुमान जी कुछ दिन उनके संग अयोध्या में निवास कर आये हैं। मगर हमें इससे कुछ प्रयोजन नहीं है चाहे पहिले उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी महाराज के दर्शन किये हों या न किये हों। उस वक्त, तो सामने होकर भी श्रीरामचन्द्र जी को एक साधारण तपस्वी के वेष में देख कर कपिजी ने बिल्कुल भी नहीं पहिचान पाया है, क्योंकि हनुमान जी को सगुण स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी की अगर कुछ परख पहिचान उस वक्त, दर्शन करते हुए होती तो निम्नोक्त कड़ियों के अर्थानुसार ऐसा अबूझक या अबोधक प्रश्न क्यों पूछते—

चौपाई।

विप्र रूप धरि कपि तहँ गयेऊ। माथ नाइ पूछत अस भयेऊ॥
को तुम श्यामल गौर शरीरा। क्षत्री रूप फिरहु वन वीरा॥
की तुम तीन देव में कोऊ। नर नारायण कै तुम दोऊ॥

दोहा—जग तारण कारण भवहिं, भंजन धरनी भार।
कै तुम अखिल भुवनपति, लीन मनुज अवतार॥

इस प्रकार पूछने से हनुमान जी के अन्दर श्रीरामचन्द्र जी की निस्बत अनजानता साफ़ तौर से पाई जाती है लेकिन हनुमान जी के उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में फिर श्रीरामचन्द्र जी महाराज

बोले कि हे ब्रह्मचारी जी सुनो, विधाता के लिखे को कोई मेटने वाला नहीं है। हम दोनों खास भाई अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं और उन्हीं की आज्ञा से १४ वर्ष वन में वास करने के लिये आये थे। हमारे साथ में एक कोमलांगी सुन्दरी हमारी भार्या थी लेकिन उसे यहाँ हमारे पीछे किसी राक्षस ने हर लिया है। हे विप्र! हम उसी को इस जंगल में ढूँढ़ते हुए भाग्यवश आप से आ मिले हैं। अब कुछ तुम अपना भी वृत्तान्त हमको सुनाओ कि तुम इस वन में अकेले क्यों घूम रहे हो? इस तरह पर आपसी बातचीत होने के बीच में ही हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में ऐसे गिर पड़े जैसे कि मानो इन्होंने पहिले कभी श्रीराम-चन्द्र जी को कहीं पर देखा ही है और अब भूल कर उपरोक्त प्रकार से बिल्कुल किसी अनजान मनुष्य की तरह पूछताछ की है मगर जब पहिला ख्याल स्मरण रूप से पैदा हुआ और इनके वास्तविक अवतारी सगुण स्वरूप को पहिचाना तो कुछ कुछ शर्मिन्दा हुए और अत्यन्त प्रेम मन में पैदा होने के कारण एक-दम लकुट की भाँति चरणों में हनुमान जी गिर पड़े जैसे कि इन कड़ियों में गुसाईं जी ने लिखा है—

चौपाई।

प्रभु पहिचान पड़े गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तनु मुख आव न वचना। देखत रुचिर भेष की रचना॥

इत्यादि रूप से अत्यन्त प्रेम में मगन होकर हनुमान जी ने फिर बड़ा धीरज धारण करके श्रीरामचन्द्र जी की इस तरह पर प्रार्थना की है—

चौपाई।

पुनि धीरज धरि अस्तुति कीना। हर्ष हृदय निज नाथहिं चीना॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम कस पूछौ नर की नाईं॥
तव माया वस फिरों भुलाना। ताते प्रभु मैं नहिं पहिचाना॥

दोहा—एक मन्द मैं मोह वश, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोइ विसारिउ, दीनबन्धु भगवान॥

चौपाई।

यदपि नाथ बहु अवगुण मोरे। सेवक प्रभुहिं परै नहिं भोरे॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारे ही छोहा॥
तापर मैं रघुवीर दुहाईं। नहिं जानों कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पितु मात भरोसे। रहै अशोच बनें प्रभु पोसे॥
अस कहि चरन परे अकुलाई। निज तन प्रगट प्रीत उरछाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींच जुड़ावा॥

इस प्रकार से इन हनुमानजी के सारे वृत्तान्त से श्रोतागण निज अंदर में यह बहुत आसानी से समझ लेंगे कि हनुमान जी सरीखे जब इन अवतारों की असलियत को यथार्थ जाँच परख करने में गड़ बड़ाते रहे हैं तब हम लोगों की क्या गूदड़ी है कि अपने वक्त के किसी सच्चे साध संत की कुछ भी असली परख पहिचान करलें सो हर्गिज़ भी यह मामला हम लोगों के वश का नहीं है यानी हम जन्म जन्मान्तरों के निहायत अंधे जीव उनकी उच्च गति का क्या हाल दर्याफ़्त कर सकते हैं अगर वह महापुरुष निज दया से जो कुछ जनावें तो हम लोग बेशक जान बूझ

सकते हैं नहीं तो अपनी बुद्धि से उनकी परख पहिचान की आशा करना बिल्कुल हमारी मूर्खता की कार्रवाई समझनी चाहिये। लेकिन एक बात यहाँ पर कुछ सन्देहजनक उपरोक्त कड़ी 'प्रभु पहिचान परे गहि चरना' से यह पैदा होती है कि गुसाईं जी ने जो कड़ी में पहिचान लफ्ज़ रक्खा है इससे तो मालूम होता है कि हनुमान जी की श्री रामचन्द्रजी से लड़कपन में कभी भेंट हो चुकी है क्योंकि यह मसल आम ज़ाहिर है कि जिन जीवों की पहिले कहीं बचपन में या देश परदेश में परस्पर कुछ दिन मेल मुलाक़ात में जिन्दगी व्यतीत हो जाती है, पीछे जब दोनों बहुत काल के लिये कहीं के कहीं एक दूसरे से अलग हो जाते हैं तो फिर कभी कहीं मौक़ा पाकर एक दूसरे का दर्शन करते ही फ़ौरन् नहीं पहिचान लेते क्योंकि बचपन की मुलाक़ात के भूल जाने में परस्पर एक दूसरे के शरीरी अंगों की तब्दीली ही ब,खूबी कारण है और देश परदेश के मिलाप में भी ऐसे ही आपसी पहिचान न होने का सबब वेप व अन्य भी कई चिह्नों की तब्दीली हो सकती है और उपरोक्त बात के (प्रभु पहिचान परे गहि चरना) के साबित करने में नीचे लिखी हुई एक कड़ी यह भी हमें सूचित कराती है - कि हनुमान जी की जान चीह्न या मुलाक़ात श्रीरामचन्द्रजी के साथ पहिले कभी जरूर ही हो चुकी है। वह कड़ी यह है कि 'पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीन बंधु भगवान्' इत्यादि रूप से हमने पाठकों के आगे गुसाईं जी के लिखे हुए लफ़्ज़ों का भावार्थ निज बुद्धि के मुताबिक़ रख दिया है। वास्तव में इससे हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। हमारा मतलब तो

प्राचीन अवतारों की एकाएक परख पहिचान न होने का था। उसको दृष्टान्त के तौर पर नारदादि अन्य भक्तों की भांति ये हनुमानजी भी कुछ न कुछ अंश में जरूर ही पूरा करते हैं और अगर जो प्रभु पहिचान व पुनि प्रभु मोहि विसारेउ इन दोनों वाक्यों का उपरोक्त अर्थ किसी इतिहास व पुराण के साची देने से सही है, तो हनुमान जी पूरे ही तौर से हमारे पूर्वोक्त सारे कथन को दृष्टांत रूप से सही करायें तो इसमें कहना ही क्या है। सामने खड़े हुए भी श्रीरामचन्द्रजी महाराज हनुमान जी की परख पहिचान में नहीं आये हैं यह तो प्रकट है ही परन्तु इससे भी विशेष वार्ता आजकल के प्रेमी भक्तों को हनुमान जी के इस प्रसंग से यह विचारणीय है कि इतने महा विद्वान् होने पर भी हनुमान जी श्री रामचन्द्रजी के सामने अपने को इस तरह पर कहते वा ख्याल करते हैं कि हे स्वामी मैं बड़ा अवगुणी और नीच नालायक़ हूँ और मूर्ख कुटिलहृदय तथा अज्ञानी मोह के जाल में फँसा हुआ हूँ। प्रथम तो आपकी माया के आधीन इस भ्रम जाल में मोहित हो ही रहा हूँ इस पर मुझे कुछ आपने भी भुला दिया है सो हे नाथ! मुझ सरीखे सब प्रकार बल हीन और दीन जीवों का तुम्हारी इस प्रबल त्रिगुणात्मिक माया के जाल से छूटना व अलग होना विना आपकी विशेष दया मिहर के नहीं हो सकता है और हे प्रभो! आपकी कृपा होने के लायक़ मुझसे कोई ऐसी भजन बंदगी आदि उत्तम करतूत भी नहीं बन सकती है कि, जिससे मैं आपका दयापात्र सेवक कहलाऊँ। अब शोचना चाहिये कि आजकल जो, धातु, काष्ठ, पत्थर की बनी हुई श्रीराम कृष्णादि

नाम वाली नक़ली और जड़ मूर्त्तियां हैं तथा चिप्पों में चित्रित प्रतिमा हैं जिनको वर्त्तमान काल के राम कृष्णादि के सगुण उपासकों ने निज इष्ट देव सगुण स्वरूप निज अंदर में कल्पित कर रक्खा है उनको ख्याल करना चाहिये कि हनुमानजी के समान सच्चे भक्त भी सगुण अवतार स्वरूप श्री रामचन्द्र जी का भौतिक शरीर में दर्शन करके भी न पहिचान सके तो हम लोगों को इन चर्मनेत्रों से स्वप्न में भी अवतारों की पहिचान होना निहायत दुश्वार है बल्कि बिल्कुल नामुमकिन है। परन्तु बाज़ तो निज अन्दर में जानते हैं कि हम लोग सगुण मात्र स्वरूप राम कृष्णादि के बड़े ही प्रेमी भक्त और उपासक हैं और कभी कभी प्रसंग आने पर किसी के पूछने से प्रकट ही मुख से कहते हैं कि हम लाग तो राम या कृष्ण के इष्टी हैं। यह सुन कर ताज्जुब होता है कि इन लोगों ने तो ग़ज़ब ही कर दिया क्योंकि जब पुराने ज़माने के जनक, हनुमान सरीखे महा विद्वान् व प्रेमी भक्त तो इस मामले में उपरोक्त प्रकार से अपनी निहायत नीचता व निर्बलता उन प्राचीन सगुण अवतारां के सामने ही ज़ाहिर करते रहे हैं और ये लोग इस वक्त राम कृष्णादि के (आंखों के सामने जड़ नक़ली मूर्त्तियां रख कर के ही) प्रेमी बनते हैं सो यह एक बड़े आश्चर्य और निहायत शर्म व लाज करने की बात है और कुछ यह भी नहीं है कि ये वर्तमान काल के वाचक, सगुण उपासक प्राचीन काल के हनुमान आदि परमार्थी बुजर्गों की बनिस्बत माया, मोह और काम, क्रोध लोभ, मोह, छल, कपट, दंभ, पाखण्ड, अज्ञानता और मूर्खता आदि अवगुणों में उनसे

किसी प्रकार भी कम हों। मेरी समझ में अगर गौर की निगाह से जो देखा जायगा तो, इस वक्त कलि काल के जो मनुष्य निज दृष्टि या दूसरों की निगाह में बड़े ही प्रेमी परमार्थी जँचते हों (दुनियावी लोगों का तो यहाँ क़िस्सा ही क्या है) मगर उन प्राचीन बुजुर्गों के मुक़ाबिले अवगुणपन में गुंजा और पहाड़ जैसा फ़र्क़ दिखलाई देगा यानी इस वक्त के प्रेमी परमार्थी उन लोगों से पापिष्ट होने में किसी प्रकार भी कम नहीं हैं बल्कि बहुत ज्यादा हैं चाहे कोई झूठा अहंकार भले ही निज अन्दर में करता रहे। हाँ, यह जरूर सत्य बात है कि झूठा पक्षपात और मूर्खता और निर्भाग्यता और अहंकार रूपी राक्षसों की बढ़ती हर एक के अन्दर में तब से अब निज परिवार सहित बहुत ज्यादा दिखाई दे रही है मगर सद् विचार और यथार्थ विवेक व हर तरह की टेक पक्षों से रहित हृदय वाले कहीं पर कोई खोजने से ही मिलेंगे जो कि हर एक बात को अपनी निष्पक्ष निर्णय शक्ति की तराजू पर नाप-तोल कर अंगीकार करते हों। हम यह नहीं कहते कि वह मूर्त्ति के उपासक न हों बल्कि हमारी निगाह तो उनके सत्यासत्य विवेक रखने पर है। अगर कोई शख़्स राम कृष्णादि नामधारी धातु पत्थर की प्रतिमा ही का सच्चे प्रेमयुक्त निष्कपट भाव से आराधन करता हो मगर सच्ची तहक़ीक़ात के साथ उसके शुभाशुभ फल का पूरा विवेक भी निज अन्दर में हर वक्त रखता है और निज जीवात्मा के उद्धार में उससे कितनी सहायता हो सकती है इसको कभी नहीं भूलता और जब कहीं उससे बेइन्तिहा दर्जा बढ़ कर सगुण अवतारी चेतन मूर्त्ति स्वरूप वक्त के सच्चे साधु सन्तों का

कहीं पर पता चलता या माता है या निज उत्तम भाग्य से सामने दर्शन ही करता है तो फिर उसके अन्दर उस जड़ प्रतिमा की ज़रा भी टेक पक्ष और हठ नहीं रहती है। ऐसा शख्स वेशक मूर्त्तिपूजक हो उसकी नियत असल में सच्चे मालिक से मिलने ही की है। वह किसी प्रकार से दोषी नहीं है लेकिन ऐसा उदार-चित्त प्रेमी कोई कहीं विरला तलाश करने से ही मिलेगा नहीं तो ज्यादातर आजकल हम को तो गतानुगति के लोको न लोग परमार्थिकः इत्यादि रूप की कहावत वाले अन्ध परंपराधारी भेड़-चाल को पसन्द करने वाले जीव ही यहाँ पर जहाँ तहाँ कसरत से दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इति……

सातवाँ दृष्टान्त गरुड़ जी का

इसके बाद सब से श्रेष्ठ परमार्थी और विष्णु भगवान् के परम प्यारे और शुभ गुणों के अथाह भंडार हरि भगवान् के अत्यन्त सेवक बल्कि उनकी सवारी का ही हमेशा साथ में रह कर काम देने वाले महान् बुजुर्ग गरुड़ जी को ही लीजिये। देखिये कि त्रेतादि से पवित्र युग में जब श्री रामचन्द्र जी महाराज और रावण का दोनों दलों समेत घोर संग्राम हो रहा था तब इनके चित्त में भी श्री रामचन्द्र जी के अवतार की निस्बत ऐसा घोर भ्रम पैदा हुआ कि जिसको देख देव ऋषि नारदजी व सब देवों के देव ब्रह्मा जी और शिव जी सरीखे बड़े बड़े परमार्थी और योगीश्वरों की भी … नाश करने की यकायक

हिम्मत नहीं पड़ी है। अब आज कल के विष्णु और राम कृष्णादि की नामधारी मूर्त्तियों के सगुण उपासकों को महा बलवान् और महान् विद्वान् श्री विष्णु जी के वाहन गरुड़ जी का वृत्तान्त ज़रा ग़ौर की निगाह से खूब शोच विचार कर पढ़ना चाहिये कि जिन विष्णु भगवान् ने (किसी किसी पुराण की रू से) श्री रामचन्द्रजी के रूप में अवतार धारण किया है उन्हीं की आजन्म ख़ास सेवा व सवारी में हमेशा साथ रह कर भी नर लीला के सुगम अगम चरित्रों में पड़ कर कुछ भी असली परख पहिचान नहीं कर सके यानी गरुड़ जी को उस वक्त, बिल्कुल भी समझ बूझ नहीं रही। असल कथा यह है कि जब रावण के पुत्र मेघनाद और श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी से घोर युद्ध हो रहा था तब मेघनाद ने श्री रामचन्द्र जी को अपनी नागफाँस में बाँध लिया या इस तरह समझिये कि (भक्तों की तरफ़ से) सदा स्ववश और स्वतन्त्र एक अविकारी श्री रामचन्द्र जी ने ही किसी नट की तरह कपट कर अन्य लोगों को रणशोभा के लिये नर लीला के तमाशे दिखलाने के वास्ते अपने आप को उस मेघनाद की नागफाँस में बँधवा दिया है यानी उनके भक्तों की समझ से श्री रामचन्द्र जी आप ही उसकी नागफाँस में फँस गये हैं नहीं तो भला ऐसा कौन योधा है कि जो उनको बाँध सके मगर जब वह इस गिरफ़्त में आ चुके तब नारदजी ने ख़बर पा कर उनके इस बन्धन को काटने या नाश करने के लिये वैकुंठ में जाकर गरुड़ जी को यह सन्देश देकर भेजा। उन्होंने आकर एक क्षण पलक में ही नागफाँस वाले सर्पों के समूह को भक्षण करके श्रीरामचन्द्रजी को तो छुड़ा

लिया है मगर इस कार्रवाई से गरुड़ जी के चित्त में गुसाईं जी की कही हुई निम्नोक्त कड़ियों के अनुसार श्री रामचन्द्र जी के सगुण ब्रह्मावतार होने की निस्बत एक बड़ा भारी सन्देह पैदा हो गया है:—

चौपाई।

व्यापक ब्रह्म विरज वागीशा। माया मोह पार परमीशा॥
सो अवतार सुनेहु जग माहीं। देखा सो प्रभाव कुछ नाहीं॥

दोहा—भव बन्धन से छूटहीं, नर जपि जा कर नाम।
खर्व निशाचर बाँधेऊ, नाग फाँस सोइ राम॥

इत्यादि रूप से गरुड़ जी के मन में नाना तरह से भ्रम के ऊपर भ्रम उत्पन्न हो रहे हैं जैसे कि............

चौपाई।

प्रभु बन्धन समझत बहु भाँती। करत विचार उरग आराती॥
नाना भांति मनहिं समझावा। प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा॥
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयेउ मोहवश तुमरे ही नाईं॥

इस प्रकार इन उक्त कड़ियों मुताबिक़ गरुड़ जी अपने चित्त में बड़े ही विक्षिप्त और भ्रमीभूत होकर निम्नोक्त तर्क वितर्कों से बहुत ही दुख पा रहे हैं लेकिन किसी प्रकार से भी उनके हृदय को शान्ति-दायक श्रीरामचन्द्र जी के सच्चे सगुण ब्रह्मावतार रूप होने की निस्बत असली परख पहिचान कराने वाला निश्चयात्मक दृढ़ बोध अंतःकरण में उदय नहीं हुआ। वह तर्क वितर्क क्या है अगर ऐसा कोई सवाल करे तो सुनिये कि बहुत सी गुनावनें तो श्रीरामचन्द्र जी की सर्वज्ञता और अनन्त

सामर्थ्यता व व्यापकता की ज्ञापक व लखायक हो गरुड़ जी के चित्त में कुम्हार के चाक समान घूम रही हैं और बहुत सी नर-लीला के मुताबिक़ खान पान आदिक इस स्थूल शरीर से ताल्लुक़ रखने वाली सुगम चरित्रों को सूचित करा रही हैं और कोई कोई श्रीरामचन्द्र जी की अलौकिक सामर्थ्य से सम्बन्ध रखने वाली बुद्धि की गम से बाहर अगम चरित्र हैं। इस वास्ते गरुड़ जी की समझ में श्री रामचन्द्र जी की निस्बत कोई निश्चित सच्चा ज्ञान उत्पन्न नहीं होता कि आया ये श्री रामचन्द्र जी हम सरीखे मामूली जीव हैं या निर्गुण ब्रह्म के सच्चे अवतार (जैसा कि पहिले से सुना हुआ था) सगुण ब्रह्म हैं। ऐसा एक प्रकार से असलियत का निश्चय कराने वाला दृढ़ बोध गरुड़ जी के चित्त में बहुत काल मनन करने से भी जब पैदा नहीं हुआ तब वह वहाँ से भागकर नारदजी से मिले और अपने अन्दर का सब हाल आदि से अन्त तक उन ऋषि जी को कह सुनाया। तब नारद जी ने उनका सारा वृत्तान्त सुन करके यही जवाब दिया कि सुनो गरुड़ जी भगवान् की माया बड़ी प्रबल है जो कि अपनी जबरदस्त शक्ति से बड़े बड़े परमार्थी तत्त्ववेत्ताओं के मन को भी विक्षिप्त कर देती है यानी निजरचित स्थावर जंगम पदार्थों के मोह की फाँस में फँसा कर ऐसी जकड़ देती है कि उससे फिर निकलना निहायत दुश्वार हो जाता है और फिर वह प्राणी अज्ञान के वशीभूत होकर नाना तरह के (कर्मों कुकर्मों में लगा हुआ) अनेकों प्रकार के नाच नाचता है। हे गरुड़ जी! इस महा-अज्ञान रूप अद्भुत माया ने मुझे भी अनेकों बार भुलावे में देकर कई

तरह से मोह जाल में डाल कर नचाया है। वही भगवान् की त्रिगुणात्मिका माया तुम्हारे चित्त को भी घुमा रही है यानी डाँवा डोल कर रही है इसलिये हे भाई ! यह महा मोह अज्ञान रूपी पिशाचिनी मेरे थोड़े से कहे हुए उपदेश रूपी मंत्र से जल्दी ही निवृत्त होने की नहीं है। आप मिहरबानी करके पिता ब्रह्मा जी के पास शीघ्र ही चले जाइये। वह आपके इस दारुण भ्रम को जरूर ही निवारण कर देंगे। ऐसा कह कर देव ऋषि नारद जी तो दाव पाँव चलते बने और अपने मनमें माया का बल बारंबार सराह कर श्री रामचन्द्र जी के गुणानुवाद गाते हुए चले जा रहे हैं। उधर गरुड़ जी भी वहां से चलकर पिता ब्रह्मा जी के पास बहुत ही जल्दी पहुँचे और बड़ी दीन अधीनी के साथ अपना सारा रोग उनको कह सुनाया तथा जो नारद ने कहा था वह भी कह दिया तब स्वयंभू पिता ब्रह्मा जी ने भी अपने मन में बड़ा भारी भय खाते हुए भगवान् की माया को शिर नवाया और कहा कि हे गरुड़ जी ! माया का प्रभाव बड़ा अमित है क्योंकि बड़े बड़े कवीश्वर और ज्ञानी पंडित सब कोई उसीके बनाये हुए अनेकों प्रकार के खेल तमाशों में लोभित हो रातदिन खेल खेलते व नाच नाच रहे हैं। आप सच मानिये कि औरों की तो कथा ही क्या कहूँ और आपकी बीती क्या सुनूँ खुद मुझे भी उस माया ने अनेकों बार अपने छलों से छला है इसलिये हे प्यारे ! यह मामला मेरे वश का नहीं है। आप यहाँ से शीघ्र ही मेरे कहने से शिवजी के पास चले जाइये क्योंकि वह महादेवजी मेरे मुक़ाबिले में भगवान् और उनकी प्रबल माया का प्रभाव

बहुत अच्छी तरह से जानते हैं इस वास्ते वह ही आपके इस प्रवल रोग की दवा बतायेंगे। मेरी सामर्थ्य आपके इस महा अज्ञानजन्य घोर भ्रम के दूर करने की नहीं है। ऐसा निराशता की बौछार से भरा हुआ जवाब बिचारे गरुड़ जी ने जब सुना तो फिर क्या करें? दीन गरुड़ जी वहाँ से भी निज आशा भंग होने की प्रवल हवा के झोके सहते हुए शिवजी के पास पहुँचे और अपना सब क़िस्सा नम्रतापूर्वक आदि से अन्त तक कह सुनाया तब शिवजी ने उनके हाल को सुन कर गरुड़ जी की दीनता, अधीनता व कोमलता को देख कर प्रेमपूर्वक बहुत कुछ स्नेह दिखा कर यह जवाब लाचार भरी ज़बान से दिया—हे गरुड़ जी! तुम घबड़ाओ मत तुम्हारा यह प्रबल रोग ज़रूर दूर हो जायगा मगर मैं क्या करूँ आप मुझे रास्ता चलते हुए मिले हो और यह अविद्याजन्य प्रबल भ्रमरूपी रोग ऐसा नहीं है कि दो चार बातें सुना देने से ही यकायक जल्दी दूर हो जाय यह नामुमकिन है। शिव जी के कहने का तात्पर्य यह था कि हे गरुड़ जी! इस थोड़े से समय में मैं आपको कैसे समझा बुझा सकता हूँ? और ऐ प्यारे! यह भ्रम दो एक बात के उपदेशद्वारा किस प्रकार निवृत्त हो सकता है इस वास्ते मैं आपको इलाज बतलाता हूँ आप उसे करें तो ज़रूर आपकी मुराद पूरी हो सकती है। वह इलाज यह है कि आप किसी महापुरुष त्रिकालदर्शी की संगति कुछ काल तक लगातार करें तो इस मोह युक्त भ्रम से आपकी रिहाई हो सकती है। शंकर जी के कहने का तात्पर्य गरुड़ जी से यह है कि (जब बहुकाल करिय सत्संगा, तब यह होइ मोह भ्रम भंगा) इत्यादि

रूप से आप जब बहुत काल पर्यंत निरंतर किसी सच्चे योगाभ्यासी ज्ञानी महापुरुष की सेवा व सत्संग करोगे तब तुमको श्री रामचन्द्र जी के (निर्गुण ब्रह्म के अवतार) सच्चे सगुण ब्रह्मपन का यथार्थ बोध होगा और उनकी माया का हाल भी (उसके प्रभाव सहित) ठीक ठीक मालूम हो कर समझ में आ जायगा क्योंकि सुनो गरुड़ जी यह कायदा खुद मालिक ने ही मुक़र्रर किया है कि जो मुझ से मिलना चाहे वह मेरे प्यारे भक्तों द्वारा मिले यानी बिना सत्पुरुषों के सत्संग के भगवान् के स्वरूप, नाम, लीला व धाम का भेद बताने वाली कथा वार्ता रूप शिक्षा किसी को प्राप्त नहीं हो सकती और बिना सच्ची व असली शिक्षा के न महामोह रूपी भ्रम और अज्ञान ही दूर हो सकते न दृढ़ ज्ञान ही पैदा हो सकता है यानी किसी महापुरुष के उपदेश जन्य यथार्थ दृढ़ बोध के बिना अज्ञान, संशय, भ्रम, विपर्यय बिल्कुल नाश नहीं हो सकते और इनके नाश हुए बिना मालिक के चरणों का दृढ़ प्रेम किसी भक्त के हृदय में कैसे पैदा हो सकता है यानी हर्गिज़ भी नहीं हो सकता। तो अब बिना सच्चे दृढ़ प्रेम व अनुराग के वह सच्चा मालिक किसी को कैसे मिल सकता है और किस प्रकार दर्शन दे सकता है ? यानी हर्गिज़ भी वह प्रेमस्वरूप भगवन्त इन उपरोक्त अंगों के अंदर में पैदा किये बिना किसी को न पहिले मिला और न अब मिल सकता है और न आगे मिलने की उम्मेद ही हो सकती है चाहे कोई इनके बजाय कितने ही जप, तप, ज्ञान ध्यान, योग, वैराग्य आदि में सिर खपा कर उमर गँवाया करे

और अनेक भांति के अन्य भी भेषादि ऊपरी स्वाँग बनाता रहे मगर सच्चे मालिक का जब किसी को दर्शन नसीब होगा तो एक निर्मल प्रेम से ही प्राप्त होगा इसलिये हे गरुड़ जी ! इस उपरोक्त नियम के मुताबिक़ हमारी सलाह मानो तो आप सबसे महान् श्रेष्ठ और बड़े बोधवान् श्री रामचन्द्र जी के अनन्यभक्त काकभुशंड जी के पास मेहरबानी करके चले जाइये। वही आपके भ्रम को बहुत जल्दी समूल नाश करेंगे क्योंकि वह काकभुशंड जी एक तो बहुत काल के होने से माया व भगवान् के स्वरूप व प्रभाव का अनेकों बार असली तजरुबा कर चुके हैं और दूसरे मालिक की दया से वह आपभी महा ज्ञानी और सद्‌गुणों के भण्डार परम प्रेमी श्रीरामचन्द्र जी में अतिशय निष्ठा व प्रीति रखने वाले हैं इस वास्ते वे ही आपको सच्ची संगति कराने लायक़ हैं और तुम्हारे इस दारुण मोह को भी ज़रूर आसानी से दूर या नाश कर देंगे। आप बग़ैर किसी तरह का शोच विचार किये उन्हीं के पास जल्दी चले जाइये। इस प्रकार से शिव जी महाराज की सच्ची सलाह सुन कर और उसे चित्त से मान गरुड़ जी वहाँ से भी रवाना हो दिये और रास्ते की तकलीफें बरदाश्त करते हुए काकभुशंड जी के आश्रम रूप नीलगिर पर्वत पर दाखिल हो गये। जब काकभुशंड जी ने सुना कि हम सब पक्षियों के राजा गरुड़ जी हमारे आश्रम पर आये हैं तो उन्होंने आगे से आकर उनका बहुत कुछ प्रेम के साथ स्वागत किया और गरुड़ जी भी उनसे बड़ी नम्रता के साथ मिले। काकभुशंड जी ने गरुड़ जी का बहुत कुछ आदर सत्कार किया यानी उनको सुन्दर आसन पर

बिठलाकर मधुर वाणी से क्षेम कुशल पूछी और प्रेमपूर्वक यह सवाल किया कि हे भगवन्! आपका आना इस दास के यहाँ किस सेवा कराने के लिये हुआ है। तब गरुड़ जी ने बड़ी शीलता के साथ नम्र होकर अपने चित्त का सारा हाल और रास्ते का वृत्तान्त आदि से अखीर तक बिना संकोच के सब कह सुनाया और साथ ही यह प्रश्न सच्चे जिज्ञासु की रीति इख्तियार करके किया कि हे भगवन्! मुझे श्री रामचन्द्र जी के सगुण ब्रह्म होने की निस्बत बड़ा सन्देह है। उसे आप मेरे ऊपर कृपा करके दूर कर दें तो मुझे कुछ शान्ति मिले नहीं तो मेरा चित्त इस भ्रम से बहुत कुछ व्याकुल हो रहा है। ऐसा दर्दभरा गरुड़ जी का सवाल सुन कर काकभुशंड जी ने निज अधीनता पूर्वक गरुड़ जी को धैर्य व आश्वासन देकर अपनी नित्य की (हमेशा की) कथा का प्रारंभ किया और फिर उन्होंने गरुड़ जी को अनेकों भांति से चिरकाल पर्यन्त उपदेश किया जिससे उनका वह उपरोक्त भ्रम सन्देह समूल नाश हो गया और श्री रामचन्द्र जी के सगुण ब्रह्मावतार स्वरूप होने का विश्वासयुक्त पक्का बोध उनके चित्त में यथार्थ हो गया और तभी मन में सच्ची शान्ति पा कर उन्होंने ठीक ठीक आराम पाया। अगर पाठकगण व आज कल के सगुणउपासक गरुड़ जी के इस वृत्तान्त पर आदि से अन्त तक अपने यथार्थ विचार की निगाह जो डालेंगे तो मेरी तुच्छ बुद्धि से दो चार बड़े कारआमद नतीजे इससे हासिल हो सकते हैं।

देखिये कि इस व्याख्या से एक तो छोटा सा नतीजा यही निकलता है कि गरुड़ जी को श्रीरामचन्द्रजी के सगुण अवतार

होने का (काक भुशंड जी के उपदेश से) जो यथार्थ दृढ़ बोध हुआ वह ऐसा न था जैसा कि आजकल के सगुण उपासकों को होता है यानी जैसे आज कल के सगुण उपासक इस भौतिक शरीर व मन की ख्याली रची हुई धातु पत्थर की मूर्त्तियों को ही सगुण ब्रह्म स्वरूप राम कृष्ण समझ कर निश्चिन्त हो रहे हैं और इन जड़ मूर्त्तियों में ही झूठी वाचिक टेक पक्ष धारण करके सगुण अवतारी पन का दावा हठ से करते हैं और इन्हीं को पुराने बीते हुए राम कृष्ण समझ के पूज रहे या उपासना कर रहे हैं और नाना तरह की तन, मन, इन्द्रिय पुष्टिक चीजें इनके नाम से तैयार करके आपही उनका रस या स्वाद ले रहे हैं और निज चित्त में ख्याल करते हैं कि हमने तो भगवान् का भोग लगा प्रसाद पा लिया है इस कार्रवाई का वह अपने मन में बड़ा गर्व रखकर बुद्धि से निश्चय करे बैठे हैं कि हम लोग जब मरेंगे तब सीधे वैकुंठ को या राम और कृष्ण के लोक को प्राप्त होंगे क्योंकि हमने निज जीवन काल में सच्चे सगुण ब्रह्म स्वरूप राम या कृष्ण का ही निज इष्ट देव जानकर उपासना की है इसलिये मरने के पीछे वह राम या कृष्ण हमें क्यों न मिलेंगे अर्थात् निस्सन्देह हम लोग मुक्त हो निज इष्ट देव रूप राम या कृष्ण के पास पहुँच सकते हैं। अब श्रोतागण निज अंदर में ख्याल करें कि क्या गरुड़ जी को इन लोगों का सा ही बोध था ? भला इन नक़ली जड़ राम कृष्ण नामधारी मूर्त्तियों की तो गिनती ही क्या यानी बिसात ही इनकी क्या है जब गरुड़ जी को निज नेत्रों से अनेकों बार उन सगुण स्वरूप धारी श्री रामचन्द्रजी की मनोहर मूर्त्ति

का दर्शन हुआ और उस वक्त की उनको दिखाई हुई अनेकों अलौकिक कार्रवाइयों का निरीक्षण भी किया और समझ बूझ भी गरुड़ जी की कुछ आजकल के इन मूर्तिपूजकों की सी ही न थी यानी वह तो हमेशा विष्णु के परम प्यारे वैकुंठ निवासी महा बुद्धिमान् अर्थात् सब तरह से इन लोगों के मुक़ाबिले में बड़े ही ऊँचे और श्रेष्ठ विचार वाले थे मगर फिर भी सगुण स्वरूप श्री रामचन्द्रजी का यथार्थ बोध साक्षात् दर्शन करते हुए भी उनको न हुआ जिसके लिए अनेकों जगह शिर पटका है जैसा कि हम ऊपर बयान कर आये हैं। लेकिन आजकल उन बीते हुए राम कृष्ण को मूर्त्तियां द्वारा भजने वाले सगुण उपासक प्राचीन ज़माने की सभी बातों में निहायत हीन व गिरे हुए होकर भी अपने को सगुण उपासक जानते हैं और मौक़ा मिलने पर निज मुख से कहते भी हैं कि हाँ हम निर्गुण को कुछ नहीं समझते हमें तो एक राम कृष्ण का सगुण स्वरूप ही अत्यन्त प्यारा है और हम इसी के मानने वाले सगुण उपासक हैं सो ऐसा उनके मुखसे सुन कर और इस गरुड़जी के वृत्तान्त को विचार कर हँसी आती है कि भला इस मूर्खता का क्या कुछ ठिकाना है ? और अपनी छोटी सी बुद्धि से श्री रामचन्द्रजी के उस सच्चे सगुण स्वरूप के प्रभाव का ख़्याल करते हुए आश्चर्य के साथ कहे बिना नहीं रहा जाता कि अरे भोले भाले सगुण उपासक भाइयो ! ऐसा अंधेर इन काल भगवान् स्वरूप श्री रामचन्द्रजी की राजधानी में आप लोग क्यों करते हो क्योंकि तुम लोग उपासक या दास तो अभ।

वास्तव में अंदर से पूर्व जन्मों की अपनी अनंत आशा वास-नाओं के कारण या वश होकर निज तन मन इन्द्रियों के या उनके मुतल्लिक़ जो जो विषय भोग हैं उनके या स्त्री, धन, कुटुम्ब, परिवार रिश्तेदार, यार, दोस्त, माल असवाव वग़ैरह वग़ैरह के या इन धातु काष्ट पत्थर की बनी हुई मूर्त्तियों के हो और तुम्हारी जान पहिचान और लाग लगन व मानता भी इस वक्त. इन नक़ली राम कृष्ण की प्रतिमाओं ही से है। वक्त. के किसी सच्चे सगुण अव-तार की महिमा इनके मुक़ाविले में आपके अंदर जब किसी के समझाने बुझाने से भी नहीं घुसती और गरुड़ जी की भाँति आप लोग जब कुछ तहक़ीक़ात या खोज तलाश भी नहीं करते हो तब यह कहाँ का तुम्हारा यथार्थ न्याय ठहरा कि सब प्रकार से बल हीन या साधन रहित होकर भी मरने के बाद प्राप्त करना चाहते हो राम या कृष्ण लोक या, वैकुंठ धाम को या और झूठी आशाएँ बांधे बैठे हो उन सगुण ब्रह्म स्वरूप राम या कृष्ण से मिलने की। सो यारो ऐसा पोपा बाई का राज्य नहीं है। तुम्हारी तुच्छ भावना के मुताविक़ (या मतिसागतिर्भवोत) ही होगा इससे अन्यथा हर्गिज़ भी नहीं हो सकता। इस मामले में अगर मानो तो उन्हीं पिछले सच्चे सगुण अवतारी कृष्ण महाराज के निज मुखसे निकले हुए गीता के नवें अध्याय का २५ वाँ मंत्र भी प्रमाण के तौर पर हम आप लोगों के सामने पेश करते हैं।

श्लोक

यांति देव व्रता देवान्, पितॄन्यांति पितृ व्रता।
भूतानि यांति भूतेज्या, यांति मद्याजिनोपमाम् ॥

अर्थ—इन्द्र, अग्नि, आदिक देवताओं के मानने वाले उन देवताओं को ही प्राप्त होंगे, पितरों के पूजक पितरों को ही पावेंगे, तथा भूत प्रेतों के सेवने वाले सब मर कर भूत प्रेत ही बनेंगे और सिर्फ़ एक मेरी आराधना करने वाले निष्काम प्रेमी मुझ से ही मिलेंगे। इसी उसूल पर मूर्त्तियों के उपासक उन मूर्त्तियों को ही प्राप्त होंगे जिन्हें वह पूजते हैं इत्यादि रूप से देखो उन अवतारों ने ही साफ़ साफ़ अपने वक्त में निज भक्तों को शिक्षा दी है। अब चाहे कोई इसे माने या न माने। अब रहा भावना का सवाल सो इसका जवाब हम कुछ तो भूमिका में लिख आये हैं और कुछ आगे चलकर बहुत अच्छी तरह पाठकों को निर्णय करके सुनावेंगे।

गरुड़जी के वृत्तान्त से जो दूसरा नतीजा निकलता है उसको देखिये कि सगुण अवतार स्वरूप श्री रामचन्द्रजी महाराज भी उस वक्त मौजूद हैं और गरुड़ जी भी कुछ मामूली ही व्यक्ति या पांच सात वर्ष के बालक न थे बल्कि श्री रामचन्द्रजी महाराज के विद्यमान होने से उनकी महिमा, प्रभाव और अलौकिक कार्रवाइयों को भी इन गरुड़जी ने कुछ न कुछ सुनी समझी व देखी ही होंगी मगर फिर भी इन्होंने उस पुराने निज ज़माने के अवतार की असलियत को अच्छी तरह नहीं जान पाया था बल्कि गुसाईं जी के उक्त दोहे की निचली कड़ी के अर्थ को इन्होंने दृष्टान्त बन बहुत अच्छी तरह सिद्ध किया है और दर्याफ़्त करने पर ब्रह्मा या शिवजी से समझाने बुझाने वाले यानी परख पहिचान बताने वाले भी उन सगुण अवतारों की असल गति यानी सुगम

अगम चरित्रों में चकराते या दांतों के नीचे अंगुली दवाते रहे हैं तो आजकल के ये अक्षरवेत्ता पढ़े पंडित, गेरुआ वस्त्र धारी वाचक ब्रह्म ज्ञानी, विद्यावान् संन्यासी, बाबा जी, राम कृष्ण संप्रदायी, मूर्तिपूजक वैरागी लोग, मठधारी महंत, मन्दिरों के बड़े बड़े अधिष्ठाता पुजारी या अन्य साधारण मनुष्य उन महापुरुषों के असली स्वरूप को क्या समझ सकते हैं और क्या समझ लेकर उन सगुण अवतार स्वरूप श्री रामचन्द्रजी या श्री कृष्णजी के ये उपरोक्त लोग सगुण उपासक बन रहे हैं। यह इन लोगों को मालूम नहीं है कि भला जब श्री रामचन्द्र जी के सगुणस्वरूप को यथावत् जानने के लिये उनके सुगम अगम चरित्रों में ढके हुए होने से गरुड़, नारद और ब्रह्मा जी सरीखे सामर्थ्य-वानों की भी हिम्मत नहीं पड़ी और एक दूसरे के पास गरुड़ जी को भेज कर अपनी अपनी अनजानता को टालम टूल में छिपाकर यह ब्रह्मादि महान् पुरुष कानों पर हाथ रख लेते भए हैं तो इन उपरोक्त सगुण भक्तों को अगर इस मामले में बिल्कुल अंध विश्वासी भेड़िया धसान वाला ख्याल किया जाय तो क्या बेजा है ? क्योंकि न तो अब वह पुराना सच्चा सगुण अवतार ही कहीं मौजूद है न इनमें कोई गरुड़ जी सरीखा खोजी प्रेमी ही है और न कोई इन लोगों के यहाँ इस वक्त नारद और ब्रह्मा या शिवजी सरीखा महान ऋषि या देवों का देव बड़ा योगाभ्यासी ही विद्यमान है तब कैसे ये आजकल के उपरोक्त लोग अपने को सगुणोपासक या राम या कृष्ण के भक्त ख्याल करते या समझते हैं ? यह भी एक बड़ा तअज्जुब ही समझो।

गरुड़ जी के उपरोक्त व्याख्यान से तीसरा सवक़ हम लोगों को यह जहननशीन कर लेना चाहिए कि सगुण अवतार स्वरूप श्री रामचन्द्र जी की असलगति का हाल जैसे त्रिकालदर्शी उन काकभुशंड जी को ठीक ठीक ही मालूम था और उन्होंने ही उस वक़्त के सगुण अवतारों का असली तत्त्व गरुड़ जी को निज अनुभव से (न कि किताबों में पढ़कर) समझाया बुझाया था इसी तरह आज कल ये जड़ मूर्त्तियाँ न तो राम कृष्ण का सगुण स्वरूप ही हैं और न अब वह पुराने अवतार ही मौजूद हैं न आजकल हम लोगों में काकभुशंड सरीखा कोई त्रिकालदर्शी ही है इस वास्ते झूठे सगुण उपासना के गोरख धंधे को छोड़ करके किसी वर्तमान काल के सच्चे साध संत की कहीं तलाश करें तो गरुड़ जी के समान इन लोगों की मुराद जरूर पूरी हो सकती है। नहीं तो अनेकों जन्म इस भेड़िया धसान की करतूत में इस वक़्त के सगुणोपासक भले ही खपे रहें। अन्त में इस चौरासी के चहले में ही बार बार इधर उधर धक्के खाकर गिरना होगा। चाहे इस बात को इस वक़्त वे हठ से क़बूल करें या न करें।

नीचे लिखे हुए चौथे नतीजे पर निगाह डालने से अगर पक्षपात से रहित होंगे तो जरूर अपनी ग़लती को आप कुछ न कुछ समझ जायँगे। वह चौथा नतीजा इन गरुड़ जी की कथा से यहाँ पर यह निकलता है कि ऊँचे धामों से आये हुए सगुण अवतारों का हाल या तो उन्हीं अवतारों को मालूम है या उनसे भी ऊपर के धनियों को मालूम है या कोई यहाँ का वासी अभ्यास करके

काकभुशंड जी सरीखा दयापात्र, जो उनके असली उत्थानपद तक पहुँचे थे, बन जाय तो वह भी सारे भेद से पूरा वाक़िफ़ हो सकता है। इन तीनों के बजाय चाहे कोई अन्य नारद सरीखा चारों ही वेद छः हों शास्त्र और अठारहों पुराण, इतिहास व्याकरण आदि का अच्छी तरह अर्थ सहित अध्ययन कर्त्ता महान् ऋषि हो या स्वयंभू ब्रह्माजी सरीखा सम्पूर्ण जगत् निर्माता व विधाता ही हो या शिवजी के समान त्यागी, वैरागी, योगाभ्यासी आठों सिद्धि नवों निधियों का मालिक हो और चाहे गरुड़ जी सरीखा विष्णु का निहायत नज़दीकी हो या उनको रात दिन अपने कंधे या शिर या पीठ पर चढ़ाये फिरने वाला भक्त हो मगर जैसे ये उपरोक्त महान् आत्माएँ उन बीते हुए राम कृष्णादि सच्चे सगुण अवतारों के यथार्थ हाल जानने में निहायत अज्ञानियों की तरह अपनी कम लियाक़तीं या असमर्थता या बेबशी जाहिर करती रही हैं और सच्चे बुद्धिमान् ग़ैर पक्षपातियों को जैसे उस सगुण उत्थानी ऊँचे पद की अविज्ञता उन महान् पुरुषों के अन्दर उस वक्त के उनके हाल को सुनकर साफ़ दीख रही है। इसे हर कोई मामूली शख्स निज बुद्धि से हर्गिज़ भी नहीं मालूम कर सकता है। इसी प्रकार आजकल भी कोई उन पुराने अवतारों के हाल को कुछ भी नहीं जान सकता। चाहे उपरोक्त कहे हुए नारदादि महान् पुरुषों के पद को भी हस्तामलक वत् हासिल करले। मगर सच्चे सगुण अवतारों का भेद एक बाल बराबर भी वह नहीं पा सकता। इन सबके मुक़ाबिले में जैसे काकभुशंडजी उन सगुण अवतारों के हाल से पूरे वाक़िफ़कार पहुँचे हुए पुरुष थे वैसे

ही उपरोक्त इल्म धारी पंडित और संन्यासी और महंत वैरागी और पुजारियों को छोड़ कोई सच्चा संत ही या अन्य अभ्यासी पुरुष ही वर्तमान के अवतारों या प्राचीन काल के राम कृष्णादि सगुण अवतारों का असली भेद दूसरों को ठीक ठीक समझा सकता है और उस पद तक किसी प्रेमी अधिकारी को अगर वह सच्चा चाहगीर बने तो पहुँचा भी सकता है। इसके सिवाय और किसी के वश का यह मामला नहीं है चाहे कोई ढोंग भले ही बनाया करे। इसके बाद एक और भी सबसे बढ़िया उदाहरण निहायत नजदीकी राजा दशरथ का ही लीजिये।

आठवां दृष्टांत राजा दशरथ जी का

श्री रामचन्द्रजी की असलियत की अनभिज्ञता में बड़ा पक्का प्रामाणिक दृष्टान्त त्रेता युग के राजा दशरथ का ही मौजूद है। देखिये कि राजा दशरथ ने पिछले मनु-शरीर से बड़ा उग्र तप करके श्री ब्रह्म भगवान को प्रसन्न किया और उनसे यह वरदान माँगा कि हे प्रभो! मुझे अपने समान एक पुत्र प्रदान कीजिये। चाहे मुझे दुनिया के लोग मूढ़ अज्ञानी ही कहें और समझें मगर मेरी प्रीति आप से पुत्र-स्नेह की ही हमेशा रहे बल्कि आपके साथ मेरा जल मछली और मणि सर्प का सा अखंड प्रेम हो। यद्यपि वैसे तो आप तमाम जगत् के और ब्रह्मादिक त्रिदेवों के भी उत्पन्न, पालन और संहार करने वाले सर्व समर्थ प्रभु हो मगर मेरी इच्छा तो आप से आप ही सरीखा एक पुत्र

मांगने की है इसलिये हे प्रभो! मैं आप से यही एक वरदान चाहता हूँ। ऐसा कहना राजा दशरथ का सुनकर भगवान् ने उनसे तथास्तु कह के यह समझाया कि हे राजन्! अगर तेरी यही प्रबल इच्छा है तो मैं जरूर ही कुछ दिन बाद तेरे यहां निज अंशों सहित अवतार लूंगा। तू निस्संदेह अब इस दारुण कष्ट युक्त तप को त्याग इस जंगल से निज राजधानी को वापिस चला जा। ऐसा वचन देके भगवान् तो गुप्त हो गये और राजा मनु अपनी राजधानी में आकर इस तप वाले शरीर को छोड़ इन्द्र-लोक में कुछ दिन निवास करके अयोध्या में प्रकट हो दशरथ नाम को सुशोभित कर राज्य करने लगे। इस अवसर में पूर्वोक्त वाक्यानुसार इस सृष्टि के रचियता प्रभु ने भी समय पाकर इन राजा दशरथ के घर में नर-शरीर धारण करने की मौज फरमाई और श्री रामचन्द्र जी के नाम से विख्यात हुए। ऐसा होने पर भी राजा दशरथ को पिछले जन्म की कार्रवाई का इस शरीर में कुछ भी यथार्थ ज्ञान नहीं रहा। वह अपने घर में समयानुसार प्रकट हुए निर्गुण ब्रह्म के सगुणावतार श्री रामचन्द्र जी को निम्नोक्त कड़ी अनुसार निज पुत्र करके जानते और अन्दर में ऐसा ही मानते भी रहे हैं।

दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना। सुख भयो ब्रह्मानन्द समाना॥

इस प्रकार से राजा की प्रीति प्रतीति व जान पहिचान श्री रामचन्द्र जी से अब निज पुत्र रूप करके ही श्रोतागणों को समझनी चाहिये, न कि उनको अब ऐसा ज्ञान हो कि 'तुम

ब्रह्मादि जनक जगस्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतर्यामी' सो अब ढूँढ़े भी नहीं रहा था। श्री रामचन्द्र जी के जन्म लेने के बाद अनेकों ऋषि मुनि वशिष्ट विश्वामित्रादि और अन्य साधु महात्मा हरि-भक्त जन दर्शन करने को हमेशा आते जाते थे और श्री राम-चन्द्र जी को निराकार ब्रह्म का सगुणावतार ही सबने जाना व एक दूसरे से उपदेश भी ऐसा ही किया है। राजा ने भी निज कानों से हमेशा सुना व समझा मगर इस नीचे की कड़ी अनु-सार निज मरण पर्यंत भी श्री रामचन्द्र जी के साथ प्रीति राजा दशरथ ने पुत्र-भाव से ही की है:—

सुतविषयक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहौ किन कोऊ॥

यानी यह नहीं कि श्री रामचन्द्र जी को राजा दश-रथ सगुण ब्रह्म रूप निज अन्दर में ख्याल करते हों सो हर्गिज भी किसी टेकी पक्षपाती को अपने भीतर वहम न पकड़ना चाहिये क्योंकि उस वहमी पक्षपाती को निज भ्रम दूर करने के लिये यह शोच विचार लेना चाहिये कि प्रथम तो वह राजा दशरथ अपने अन्दर में अनेकों जन्म की छिपी हुई पुत्र वासना के कारण तपस्या के फल में यह वर हो मांग चुके थे कि:—

दोहा—दानि शिरोमणि कृपानिधि, नाथ कहौं सति भाउ।
चाहौं तुमहिं समान सुत, प्रभुसन कवन दुराउ॥

यानी हे भगवन्! मैं आप से अपना पुत्र होने का वरदान मांगता हूँ अर्थात् आप के स्वरूप समान वाला ही मेरे यहाँ पुत्र हो और दूसरे मरने के उपरान्त जो उनको इन्द्रलोक में जाना

पड़ा और फिर उसी मोह में वहाँ से लौटकर श्री रामचन्द्र जी से पुत्र पिता का नाता व प्रेम दिखाया जब कि श्री रामचन्द्र जी ने कुछ डाट कर इस बंधन से अलग होने का उपदेश भी किया जिससे लज्जित हो उसी सुरलोक को राजा वापिस चले गये। ये सब उपरोक्त बातें राजा दशरथ की श्री रामचन्द्र जी को निज पुत्र जानने व मानने में पूरा और पक्का सबूत दे रही हैं। चाहे कोई अपने हठ से माने या न माने लेकिन राजा की प्रीति श्री रामचन्द्र जी से पुत्रभाव से ही थी। यद्यपि वह श्री रामचन्द्र जी का निहायत सुहावन रूप और अनेकों अमानुषिक और आश्चर्यकारक कार्रवाइयाँ लड़कपन से ही देखते व सुनते रहे हैं। परन्तु तो भी उनकी प्रीति श्री रामचन्द्र जी से उसी सद् व्यवहार द्वारा पुत्र रूप में ही बढ़ती व दृढ़ होती रही। ऐसा कोई मजबूत प्रमाण नहीं है कि जैसे पिछले मनु वाले जन्म में उन्होंने भगवान् की इन निम्नोक्त कड़ियों मुताबिक़ निर्गुण ब्रह्म रूप से प्रार्थना की थी वैसे इस दशरथ वाले शरीर में श्री रामचन्द्र जी को कहीं भी नहीं माना व पुकारा है।

चौपाई।

अगुण अखंड अनंत अनादी। जेहि चितवहिं परमारथ बादी ॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। चिदानन्द निरुपाधि अनूपा ॥
शंभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंशते नाना ॥
ऐसे प्रभु सेवक बस अहहीं। भक्त हेतु लीला तनु धरहीं ॥
जौ यह बचन सत्य श्रुतिभाषा। तौ हमार पूजहि अभिलाषा ॥

जौ अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होय यह वर दूहू॥
जो स्वरूप वस शिव मनमाहीं। जेहि कारन मुनि यतन कराहीं॥
जो भुसंडि मन मानस हंसा। सगुण अगुण जेहि निगम प्रशंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन॥

अपने इस मनोरथ पूर्ण होने की प्रसन्नता में राजा दशरथ जन्म पर्यंत श्री रामचन्द्र जी को निज प्यारा पुत्र ही समझते रहे न कि उपरोक्त कड़ियों मुताबिक़ अखंड ब्रह्म के अवतार सगुण स्वरूप। ऐसा ज्ञान उनको इस दशरथ वाले शरीर में कभी नहीं हुआ। कारण यह था कि सारे जन्म में अपने यहाँ कोई सन्तान पैदा न होने की वजह से जबरदस्त ख्वाहिश के पूरा करने के लिये बहुत कुछ चिन्ता फ़िक्र से बड़ी तकलीफ़ें झेलते रहे। अब चूँकि वह इच्छा बुढ़ापे में पूरी हुई इस वास्ते निर्गुण सगुण का विवेक या ये रामचन्द्र जी वास्तव में कौन हैं, कहां से आये हैं और कहां जायँगे इत्यादि रूप से इन बातों की तहक़ीक़ात के झंझट में अब कौन पड़े और श्री रामचन्द्र जी सरीखा सबका माननीय पुत्र पाकर भला अब राजा की खुशी का क्या वार पार था। दिन रात ऐसे आनन्द में व्यतीत होते थे कि कुछ भी सुधि बुधि नहीं थी। इस वास्ते निज घर में ही प्रकट हुए भेदोपासना के फल रूप श्री रामचन्द्र जी के नित्य दर्शन करते व वचन वार्ता या सत्संग करते हुए भी राजा को श्री रामचन्द्र जी के सगुण ब्रह्मावतार होने का यथार्थ बोध या ज्ञान कुछ भी नहीं हुआ। अगर जो राजा को किसी वशिष्ठादि सरीखे ऋषि मुनि के समझाने बुझाने

से या अपने ही पूर्व श्रेष्ठ संस्कार के प्रकट होने से इस शरीरथी शरीर में श्री रामचन्द्र जी की असलियत का कुछ भी पक्का ज्ञान होता तो जब श्री रामचन्द्रजी महाराज निज अवतार धारण करने की कार्रवाई को पूरा करने के वास्ते और राजा के निज अज्ञान जन्य बड़े दृढ़ पुत्र-स्नेह को बलपूर्वक तोड़ने आदि कई मसलहतों से एक दम सब छोड़ छाड़ के जंगल को १४ वर्ष की अवधि लेकर चल दिये हैं तब अत्यन्त दुःख पूर्वक प्राकृत दुनियादारों की तरह महा विलाप व हाय हाय करते हुए क्यों राजा शरीर छोड़ते ? जैसा कि इन कड़ियों में गुसाईं जी ने बयान किया है :—

हा रघुनन्दन प्राण पिरीते । तुम बिन जियत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लषण हा रघुबर ! हा पितु हित चित चातक जलधर ॥

दोहा—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राव गये सुर धाम ॥

इत्यादि रूप से उपरोक्त कहनि के मुताबिक और शरीर छोड़ कर जो उनको देवलोक की प्राप्ति रूप गति है तिसके लिहाज से और पीछे उसी स्वर्ग से लौट कर वही मोह दिखाने की रू से और (रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना, चितय पितहिं दीन्हेंउ दृढ़ ज्ञाना) इस कड़ी के अर्थ को ग़ौर के साथ विचारने से और पीछे उसी सुर धाम को लौट जाने से यही पक्का सबूत दृढ़ ज्ञान विचार वालों को निज अन्दर में पैदा होता है कि राजा दशरथ को श्री रामचन्द्रजी की असली परख पहिचान मरणपर्यन्त भी नहीं आई । अब पाठक गण इतने विस्तृत लेख को देख कर

बखूबी समझ गये होंगे कि राजा दशरथ को निज पुत्र होने के कारण श्री रामचन्द्रजी के सगुण ब्रह्म पन का बिल्कुल ही कुछ बोध न था क्योंकि जो उनको श्री रामचन्द्रजी के असली नाम, रूप, लीला, धाम का यथार्थ सच्चा ज्ञान अंतर में पहिले कुछ रहता तो क्यों ऐसी निहायत ओछी गति यानी स्वर्ग को प्राप्त होते? क्यों वहाँ से लोट कर इस मर्त्य लोक में आते और क्यों फिर वहीं वापिस पहुँचते? इन बातों से साफ़ जाहिर है कि राजा को श्री रामचन्द्रजी में पुत्रपन का ही प्रेम और ज्ञान था न कि सगुण ब्रह्मपन का। इस उपरोक्त कथा को दुबारा लिखने से हमारा तात्पर्य यहाँ पर यह है कि गुसाईं जी ने राजा दशरथ की गति की बाबत जो यह लिखा है कि :—

ताते उमा मोक्ष नहिं पावा। दशरथ भेद भक्ति मन लावा॥
सगुणोपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ राम भक्ति निज देहीं॥

अर्थात् राजा दशरथ ने अपना मन श्री रामचन्द्रजी में भेद भक्ति से ही लगाया था। इससे वह मुक्ति को प्राप्त नहीं हुए और सगुणोपासना करने वाले प्रेमी भक्त अपनी मोक्ष नहीं चाहते हैं इसलिये श्रीरामचन्द्रजी फिर उनको निज भक्ति का वरदान देते हैं। अब यहाँ पर (उस असल प्रसंग को छोड़) गुसाईं जी की इस ऊपरी कहावत का कुछ थोड़ा सा निर्णय करने की आज्ञा प्रसंगानुसार बीच में हम श्रोतागणों से हाथ जोड़ कर माँगते हैं। तात्पर्य यह है कि जो गुसाईं जी ने लिखा है कि राजा दशरथ भेदभक्ति वाले थे मगर यह गुसाईं जी का कहना हमारी समझ में नहीं आता है कि राजा की भेद-भक्ति किस प्रकार की थी

क्योंकि भेद-भक्ति के बाबत भक्ति शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि एक भक्ति तो स्वामी सेवक पन की और दूसरे पिता पुत्र पन की और तीसरे प्रेमी प्रीतम पन की चौथे सखा भाव पन की भक्ति ही शास्त्रों में भेद भक्ति गिनी जाती है। हाँ कहीं पर भक्ति-शास्त्र में (किसी किसी भक्त के लिये निज इष्टदेव में प्रेम प्रीति करने का ज़रिया) पुत्र पितापन का भाव यानी वह भगवंत हमारा प्यारा पुत्र है और हम उससे प्रेम करने वाले उसके पिता हैं ऐसा लिखा हो यह हम मानते हैं, मना क्यों करें ? मगर उन चारों के मुक़ाबिले में यह क़ायदा यानी प्रीति करने का ज़रिया सबसे निकृष्ट दर्जे का वर्ताव निज भगवंत की निस्बत शोभा नहीं देता है यानी बहुत भद्दा है। ख़ैर ! कुछ हो लेकिन निज इष्ट देव से प्रीति करने का वसीला पुत्र पिता पन की भक्ति का शायद गुसाईं जी को मंजूर हो और किसी भक्ति-शास्त्र ने यद्यपि कहा हो लेकिन तब भी वहाँ पर निज भगवंत के सच्चे नाम रूप लीला और धाम का यथार्थ ठीक ठीक भेद निरूपण सहित ही बयान किया होगा। यह नहीं कि वैसे ही सर्व समर्थ संपूर्ण जगत् के कर्त्ता धर्त्ता भगवान् को एक दम प्राकृत जीवों की तरह किसी का यों ही पुत्र बना दिया जाय यानी प्रेम पैदा करने में ये सबसे निकृष्ट ज़रिया किसी भक्त ने अंगीकार किया होगा या किसी कवि या विद्वान् ने निजरचित भक्ति-ग्रन्थ में बयान भी किया होगा तो निज इष्टदेव के अन्य भी भेद वहाँ पर पूरे पूरे कथन किये गये होंगे मगर यह उपरोक्त रीति राजा दशरथ के अंदर श्रीरामचन्द्रजी से प्रेम प्रीति पैदा करने की निस्बत बिल्कुल नहीं

पाई जाती है। उनका प्रेम तो सांसारिक पिता पुत्र की भांति प्राकृति प्रेम का ही दर्जा रखता है। इस बात के दृढ़ करने के लिये इसी लेख में पीछे हम कई कारण निरूपण कर आये हैं। पाठकों को उन्हें ही बारम्बार विचार कर मनन करना चाहिये यानी पक्षपात से रहित अगर कोई हमारे बयान किये हुए पिछले प्रसंग को विचारेगा तो निसन्देह उसे ठीक ठीक यह मालूम हो जायगा कि राजा दशरथ आजन्म श्री रामचन्द्रजी को अपना सबसे ज्यादा प्यारा पुत्र ही मानते रहे न कि गुसाईं जी के कहे मुताबिक भेद-भक्ति को लेकर उन्होंने निज भगवंत भी कहीं पर कभी ख्याल किया हो। ऐसा ख्याल स्वप्न में भी राजा दशरथ के अंदर पैदा नहीं हुआ क्योंकि उनकी प्रथम पुत्र कामना के निमित्त अनेकों कार्रवाइयां और अंत में स्वर्ग प्राप्त कराने वाली गति ही पूरा सबूत दे रही हैं कि राजा का श्रीरामचन्द्रजी से प्रेम पिता पुत्रपन का ही था तो अब गुसाईं जी का व उपरोक्त कड़ी वाला अर्थ कैसे मजूर कर लिया जावे कि राजा दशरथ भेदोपासक होने के कारणमुक्त न होकर स्वर्ग को ही प्राप्त हुए थे। सच पूछो तो गुसाईं जी ने इसकी बाबत् कहीं पर कुछ खोला ही नहीं है। सारे रामायण को अच्छी तरह देखने से तो राजा पुत्र उपासक ही जाहिर होते हैं क्योंकि भेद-भक्ति या भेदोपासना के फल तो श्री रामचन्द्रजी महाराज सामने ही मौजूद हैं परन्तु उनकी प्रबल आशा तो अपने यहां पुत्र पैदा होने ही की थी। इसको उनकी वह उपरोक्त माँग और आदि मध्य और अंत की कार्रवाइयाँ व चाल ढाल और अवस्था व गति ही साफ जना रही है। दुबारा

तिवारा अब क्यों लिखें ? वह कामना उनकी पूरी होगई थी। अब न जाने गुसाईं जी उन्हें अपनी तरफ़ से कौन से शास्त्र के प्रमाण से भेद-भक्त ठहराते हैं। इसकी बाबत् उन्होंने कुछ प्रकट नहीं लिखा है। अगर निज बुद्धि से अच्छी तरह विचार किया जाय तो राजा दशरथ की अपेक्षा रावण की बहुत अच्छी गति निज रामायण में गुसाईं जी ने ही बयान की है। उसे भी पाठकों के मनोरंजन के लिये कुछ संक्षेप से गुसाईं जी की लिखी हुई निम्नोक्त कड़ियों ही के मुताबिक़ यहां पर लिखे देते हैं। इन नीचे की कड़ियों के अर्थ पर बग़ौर निगाह डाली जाय तो यह साफ़ पता चलता है कि रावण को राजा दशरथ के मुक़ाबिले श्रीरामचन्द्रजी के सगुण ब्रह्मावतार स्वरूप होने का पूरा पूरा व यथार्थ निश्चित ज्ञान था। इस बात के सबूत में ये कड़ियां हैं:—..............

सुर रंजन भंजन महि भारा। जो जगदीश लीन अवतारा॥
तो मैं जाय बैर हठि करि हों। प्रभु कर मरि भवसागर तरिहों॥
होय भजन नहिं तामस देहा। मन क्रम वचन मन्त्र दृढ़ येहा॥

इस प्रकार से रावण की इस संसार से पार होने की प्रबल इच्छा रूप मुमुक्षता ही प्रथम उसके अंदर के निहायत उत्तम निश्चय को जना रही है। दूसरे (या मति सा गतिर्भवेत) के उसूल पर निज प्रभु की प्राप्ति रूप मुक्ति व गति भी निम्नोक्त कड़ी के अनुसार उसके अन्दर के पक्के विश्वास का सच्चा सबूत दे रही है कि रावण का भीतरी निश्चय श्री रामचन्द्रजी के ऊपर पूरा २ पक्का था। कड़ी यह है।

तासु तेज प्रविसेव प्रभु आनन। हर्षे देखि शंभु चतुरानन॥

यानी उस रावण का तेज कहिये सत, चित, आनन्द स्वरूप निजात्मा अपने प्रभु के मुख यानी निर्गुण ब्रह्म रूप अपने भंडार में जा मिला और इस आवागमन वाले संसार से हमेशा के लिये पार हो गया। इस चमत्कार को देख शिवजी और ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए हैं। आगे दो एक जगह गुसाईं जी ने निज रामायण में इस रावण की गति की निस्बत चार छः कड़ियां अन्य भी उलट फेर के साथ लिखी हैं। उनका अभिप्राय और जो ऊपर एक कड़ी यह रह गई है कि 'सगुणोपासक मोक्ष न लेहीं' का भावार्थ आगे चल कर हम तुलसीकृतरामायण-तात्पर्य-निर्णय में अच्छी तरह निरूपण करेंगे। अब लौट कर उसी प्रसंग पर आते हैं और प्रिय पाठकों को फिर उसी बात या प्रसंग की याद दिलाते हैं कि अवतारों की परख पहिचान में पहिले नारद, जनक और गरुड़ जी सरीखे भी निज ज़माने में दर्शन व सत्संग करते और वचनवार्ता सुनते हुए भी धोखा खाते रहे हैं। इसी सिलसिले में राजा दशरथ को भी दृष्टान्त रूप बना हमने शामिल किया था और इन राजा को उदाहरण बना यह बात ज़ाहिर की कि देखो अपने घर में ही पैदा हुए सगुणावतार श्री रामचन्द्र जी को इन्होंने मरण पर्यंत भी नहीं पहिचान पाया और निज पुत्र ही ख़्याल करते रहे तो आज कल का कोई भक्त उन पिछले अवतारों की क्या असली जाँच परख कर सकता है और जब उनके मौजूद न होने से अन्दर में बिल्कुल अनभिज्ञता ही है तो फिर उनकी भक्ति और उपासना भी बिना दूल्हा की शादी के मुआफ़िक़ कोरा परिश्रम ही समझना चाहिये। इन राजा दशरथ के दृष्टान्त से भी

यही सबक़ मिलता है और वर्तमान काल में खुद आँखों से भी देखा जाता है कि बिना मालिक की दया मेहर के चाहे अपने घर में ही कोई महा पुरुष पैदा हों या पास ही दिन रात बने रहें मगर पिछले या वर्तमान काल के सगुण, अवतार या पूरे साध संत कुछ भी (निज बुद्धि पर अज्ञानता का पर्दा पड़ने की वजह से) असली परख पहिचान में नहीं आ सकते। चाहे कोई घमंड भले ही करता रहे मगर इस मामले में वह बिल्कुल ही अंधा है।

आठवां दृष्टान्त वशिष्ठजी का

अब इसके बाद पीछे लिखे हुए सब उदाहरणों के गुरू वशिष्ठ जी को ही लेते हैं और उनके अपने मुख से ही निकले हुए वचनों को प्रामाणिक बनाकर इस वक्त के सगुणोपासकों को यह बात उनके जहननशीन कराते हैं कि हे सगुण भक्तो! तुम अपने दिल में घमण्ड न करो यह सगुण भक्ति का मामला ऐसा बिल्कुल ही मुख का निवाला नहीं है जिसे हर कोई आसानी से ही खाले यानी समझले क्योंकि इस सगुणोपासना के आधार भूत इन सगुण अवतारों की असलियत ही पहिले जब कुछ समझ में नहीं आती। तब बिना इसके आपकी भक्ति ही क्या है? इस बात के सिद्ध करने में पीछे हमने गीता के उक्त श्लोक को और गुसाईं जी के उत्तरकाण्ड के दोहे को अग्रसर करके नारद और गरुड़ादि सरीखे प्राचीन काल के कई प्रेमी भक्तों को दृष्टान्त

के तौर पर पेश कर दिखाया है और जो कोई आजकल के वाचक भक्त या पक्षपाती टेकी व हठी उपासक हैं उनकी बुद्धि की बेटी समझ बूझ और तिसकी बहिन रूप लज्जा को भी लजाने या शर्म दिलाने वाला इन गुरू वशिष्ठ जी का भी दृष्टान्त संक्षेप से हम और आगे खड़ा किये देते हैं। देखिये कि सब ऋषियों में ब्रह्म ऋषि और महान् सर्वज्ञ, त्रिकाल दर्शी, ब्रह्मा जी के खास प्यारे पुत्र और आगे पीछे पैदा होने वाले सूर्य वंश के सब राजाओं के पुरोहित और गुरु जो वशिष्ठ जी महाराज हैं उनका ही हाल उस वक्त, के सगुण अवतार स्वरूप श्री रामचन्द्रजी की सच्ची परख पहिचान होने की कठिनता में सुनिये। उन्होंने (वशिष्ठ जी ने) निम्नोक्त कड़ियों मुताबिक़ अंदर के उस असली व्यौरे को अपने मुख से ही श्री रामचंद्रजी के आगे यों बयान किया है। इससे ज्यादा सच्चा व पक्का सबूत और क्या हो सकता है। जैसे कि—

चौपाई।

एक बार वशिष्ठ मुनि आये। जहां राम सुख धाम सुहाये॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखार चरणोदक लीन्हा॥
राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपा सिंधु बिनती कुछ मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा॥
महिमा अमित वेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहों भगवाना॥
उपरोहिती कर्म अति मन्दा। वेद पुराण स्मृति कर निन्दा॥
जब न लेंहु मैं तब विधि मोही। कहा लाभ आगे सुत हो ही॥
परमात्मा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषण भूपा॥

दोहा—तब मैं हृदय विचार किय, योग यज्ञ जप दान।
जेहि नित करिय सो पाइये, धर्म न दूसर आन ॥

इत्यादि रूप से गुरु वशिष्ठ जी महाराज ने श्री रामचन्द्र जी को जब वह वन से लौटकर राजगद्दी पर सुशोभित हुए और सब कोई उनके पास से चले गये तब एकान्त में जाकर उपरोक्त प्रकार से अपने अंदर का हाल सुनाया कि हे प्रभो ! जब मैं ब्रह्मा जी के यहाँ पैदा होकर कुछ योग्य हुआ तब मेरे पिता ब्रह्मा जी ने मुझे इस सूर्यवंश की पुरोहिताई करने की आज्ञा की। मगर मैं ने इस काम को ओछा समझ उनसे बहुत मना किया तो उन्होंने कहा कि हे पुत्र ! तुम इससे घृणा मत करो क्योंकि इस भानु वंश में आगे चलकर कुछ काल के बाद परब्रह्म परमात्मा का नर शरीर में पूर्ण सगुण अवतार होने वाला है इसलिए तुमको जब उसके दर्शन व सत्संग का बड़ा भारी लाभ (इस वंश की पुरोहिताई इख्तियार करने में) अनायास ही प्राप्त होगा तब निज भाग्यों को सराहोगे क्योंकि नर-शरीर में उस निराकार निर्गुण ब्रह्म के दर्शन होना बड़ा ही परम श्रेष्ठ भाग्यों का फल है और जब वह नर चोले में अवतार धारण करता है तब यहाँ के मनुष्यों को उसके दर्शन व सत्संग और सेवा भक्ति या उपासना करने का मौक़ा ही मिलता है सो वह जप तपादि बहिरङ्ग या शमदमादि अंतरङ्ग सारे साधनों का फल है और उसकी अपार दया मेहर से ही यहाँ के जीवों को उसके सच्चे धाम में पहुँचने का मौक़ा या शुभ अवसर मिलता है यानी सच्ची गति रूप मुक्ति उस सगुण ब्रह्म की ही

कृपा करने पर मनुष्यों को हासिल हो सकती है। इसके लिए अन्य कोई उपाय नहीं है सो हे पुत्र ! वह इसी प्रकार की अनेकों परम लाभों से भरी हुई मसलहतों को मद्दे नजर रखकर यहां पर नर शरीर में प्रकट होता है। सो हे भगवन् मेरे लिये पिता जी का उपरोक्त कहना तो सब अक्षरशः सही हुआ क्योंकि आप के मनोहर स्वरूप का दर्शन मुझे बहुत काल से हो रहा है लेकिन हे प्रभो ! आपके सुगम और अगम चरित्रों यानी दिन रात के हर एक तरह के मानुषीय आचरणों को देख देख या सुन सुन कर मेरे हृदय में बड़ा भारी संदेह और भ्रम पैदा होता रहता है क्योंकि आपकी सारी कार्रवाईयाँ या आचरण तो साधारण मनुष्यों की तरह ही दिखाई दे रहे हैं न जाने परब्रह्म परमेश्वर के अवतार आप कौनसी सिफ़तों को लेकर कहे जाते हो। यह मेरी समझ में आज तक भी नहीं आया है और आपके उस निर्गुणी स्वरूप की महिमा व प्रभाव तो अनन्त अपार है। वेद भी जिसे ज्यों की त्यों ठीक ठीक नहीं बयान कर सकता है। तब मैं उसकी निस्वत क्या समझ बूझ सकता हूँ यानी मेरी ऐसी क्या लियाक़त है कि कुछ भी उसकी महिमा को वर्णन कर सकूँ। इस प्रकार निज गुरू वशिष्ठ जी का कहना सुनकर श्रीरामचन्द्र जी मुसकराते हुए बात को टाल गये, तब वशिष्ठ जी यह मांग मांग कर निज घर को चल दिये कि हे प्रभो ! बस मैं आपसे और कुछ नहीं चाहता हूँ सिवाय इसके कि आप के चरणकमलों का प्रेम हमेशा मेरे अन्दर बना रहे, यही मेरी प्रार्थना है। ऐसा कह कर घर को चले आये। इस प्रकार से हमारे इस उपरोक्त

सारे कथन में उन प्राचीनकाल के सगुण अवतारों की मौजूदगी के गरुड़ जनकादि महान सगुण भक्तों और वशिष्ठ जी से महान पुरुषों के उदाहरणों को इस वक्त के नाममात्र के सगुण प्रेमियों को बारम्बार विचारना चाहिये कि वह अपने वक्त में उन सगुण स्वरूपों की असली परख पहिचान न होने के बारे में कैसी कैसी लाचारियाँ दिखाते हुए अपने अन्दर का हाल बयान करते रहे हैं सो उनका कहना सब सत्य है चाहे प्राचीनकाल के अवतार हों या वर्तमानकाल के सच्चे साध संत पीर पैग़म्बर या कोई फ़क़ीर महात्मा हों। इन सबकी असलियत यानी यथार्थ गति का हाल जान लेना (जैसा कि अविचारी लोग ख्याल कर रहे हैं वैसा) हर किसी के लिये आसान मामला नहीं है। सन्तों की गति सन्त ही और अवतारों की गति अवतार ही जानें और किसी की क्या सामर्थ्य है कि कुछ भी अन्दाजन ही सही सही जांच परख कर सकें सो हर्गिज भी अनुमान में कोई नहीं ला सकता है। हाँ अगर वह महापुरुष दया करें तो जरूर एक पलक में ही सब कुछ जना सकते हैं नहीं तो टक्कर मारा करे या चक्कर खाया करे, अपने आप एक बाल बराबर भी यथार्थ भेद नहीं जान या पा सकता है। बस अब इससे इन वर्तमानकाल के भक्तों को सबक सीख लेना चाहिये कि जब हमारे भगवन्त का ही हमको पूरा पूरा पता और भेद मालूम नहीं है तब हमारी भक्ति और यह सगुणोपासना ही क्या मूल्य रखती है और कैसे हम सगुणोपासक हो सकते हैं और जिन मूर्त्तियों को हमने अपना भगवन्त क़रार दे रक्खा है वह तो हम से भी

गई गुजरी और नीचे दर्जे की होने से हमारा क्या कल्याण कर सकती हैं और कैसे यह जड़ मूर्त्तियाँ हम चेतनों की उपास्य या सगुण रूप बन सकती हैं। हमारा उपास्य इष्टदेव तो हमसे भी बहुत ज्यादा चेतन होना चाहिये वह बात इनमें कहाँ हैं। इससे यह हमारी उपास्य नहीं हैं। ऐसा विचार हर एक सगुणोपासक के अन्दर में निज उपासना शुरू करने से पेश्तर ही जरूर पैदा होना चाहिये। अब ज्यादा क्या लिखें समझदारों के लिये तो इतना इशारा ही काफ़ी है और गँवारों के वास्ते सारा शास्त्र ही वृथा है जैसे कि किसी व्यभिचारिणी स्त्री के सामने किसी पतिव्रता श्रीमती देवी के गुणों का बखान करना फ़िज़ूल कार्रवाई है तैसे ही अबूझों या असूझों के सामने उनके हित की कहना भी फ़िज़ूल है। इसके बाद पूर्वोक्त सगुण अवतारों की अनभिज्ञता के प्रसंग में अब दो दृष्टान्त यहां पर प्रसंगानुसार द्वापर के भक्तों के भी हम भागवतादि से उद्धृत कर श्रोतागणों को सुनाते हैं। देखिये कि द्वापर के मध्य में जब श्रीकृष्ण महाराज का नंद यशोदा के यहाँ आना हुआ और कुछ बड़े होकर आश्चर्यजनक कार्रवाइयों के द्वारा जब श्रीकृष्ण महाराज के अवतरित होने की शुहरतें चारों तरफ़ फैलने लगीं तब सब कोई उनकी निस्बत नाना भ्रम सन्देहों में पड़ कर अपने अपने मनमाने ख्यालात दौड़ाने लगे।

नवाँ दृष्टान्त ब्रह्मा जी का।

इसी सिलसिले में सब देवों के पूज्य पिता ब्रह्मा जी का ही वृत्तान्त सुनिये। ये ब्रह्मा जी सारी सृष्टि के रचियता और चारों ही वेद के उत्पन्नकर्त्ता व वेदज्ञ और सर्वज्ञ हो कर भी निर्गुण ब्रह्म के पूर्ण सगुणावतार स्वरूप श्रीकृष्ण महाराज के अवतरित होने का निज बुद्धि से पहिले कुछ भी निश्चय नहीं कर सके हैं यानी श्रीकृष्ण जी के सगुण ब्रह्म होने की असली परख पहिचान कराने वाला भ्रम से रहित दृढ़ ज्ञान इनके अंदर भी जब (कृष्ण महाराज के नर चोले की कारवाई शुरू होने लगी) नहीं पैदा हुआ तब श्रीकृष्ण महाराज के परीक्षार्थ उनकी गाएँ और बछड़ों सहित ग्वाल वालों को ब्रह्मा जी चुरा ले गये हैं और संवत भर (एक वर्ष) अपने यहाँ रक्खे हैं। वाद को जब आकर यहाँ पर देखा तो उसी जगह पर वैसी ही गायें और वैसे ही बछड़े चर रहे हैं और मानो वही ग्वाल वाल चराते फिरते हैं। ऐसा दृश्य देख कर ब्रह्मा जी बड़ा भारी तअज्जुब मानते हुए एक दम चकित रह गये और निज अन्दर में यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि ये कृष्ण भगवान् सचमुच निर्गुण ब्रह्म के ही अवतार पूर्ण सगुण ब्रह्म हैं। हमने फ़िज़ूल ही इनकी परीक्षा की इस वास्ते अपने अपराध को चल कर हमें अब इनसे जरूर क्षमा कराना चाहिये। ऐसा सोच विचार कर पिता ब्रह्मा जी उन्हीं कृष्ण महाराज के सामने दोनों हाथ जोड़ कर निहायत ही नम्रता के साथ निज अपराध क़बूल करते हुए क्षमा कराने को

प्रार्थना करने लगे और निज बुद्धि के अन्दर यह निश्चय किया है कि ये श्रीकृष्ण भगवान् ही तमाम जगत् के उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले हैं और इस संसार के जीवों पर अतिशय कृपा करके इन्होंने यहाँ मर्त्यलोक में नरशरीर धारण करने की दया फरमाई है। वास्तव में निम्नोक्त वाक्यानुसार ये पूर्ण ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अजर, अमर, अनन्त और अपार महिमा वाले हैं। यह ब्रह्मा जी का कहा हुआ वचन यह है:—

श्लोक

एकस्त्वमात्मपुरुषः पुराणः,
सत्य स्वयं ज्योति रनंत आद्यः॥
नित्योऽक्षरोऽजस्र सुखोनिरंजनः
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधि तोऽमृतः॥

अर्थ यह है कि ब्रह्मा जी निज मुख से फरमाते हैं कि हे श्रीकृष्ण भगवान्! आप कैसे हो कि एक रूप हो कर चराचर प्राणियों के अन्तरात्मा हो और सारे शरीर रूप पुरियों विये विराजमान होने से आप पुरुष हो और इससे प्रथम भी आप मौजूद हो इससे पुराण हो। तीनों काल में बाधते रहित होने से सत्य हो और निज प्रकाश में अन्य की अपेक्षा से रहित स्वयं ज्योति स्वरूप हो। देश, काल, वस्तु, परिच्छेद से रहित होने से अनन्त हो, सबके आदि कारण आप उत्पत्ति विनाश से रहित, अक्षर और व्यापक और सुख स्वरूप हो और अज्ञानसे रहित

सर्वत्र परिपूर्ण द्वैत भाव से रहित हो और सारी उपाधियों से परे अमृत और मोक्ष स्वरूप हो। इस प्रकार से ब्रह्मा जी के निजी अन्तरी सच्चे भाव का जाहिर कर्त्ता यह उपरोक्त श्लोक श्रीकृष्ण महाराज के मुतअल्लिक भागवत में व्यासजी ने कहा हुआ है। अब पाठकगण निज अन्दर में विचार देखें कि इतने प्रभावशाली ब्रह्माजी को भी सगुणावतार स्वरूप श्रीकृष्ण महाराज की पहिले असल परख पहिचान दर्शन करते हुए भी नहीं आई इसी वास्ते ऊपर बयान की हुई कार्रवाई परीक्षार्थ उन्होंने की। अगर जो पहिले ही उन्हें यथार्थ जाँच परख हो जाती तो क्यों ऐसा घृणित कृत्य करने का निज अन्दर में ख्याल उठाते इसलिये सगुणावतारस्वरूप श्रीकृष्ण भगवान् की ब्रह्माजी के अन्दर अनभिज्ञता का काफ़ी सबूत उपरोक्त कार्रवाई यह दे रही हैं कि जी को भी अवतार स्वरूप श्रीकृष्ण जी का प्रथम असल बोध नहीं हुआ पीछे कुछ परीक्षा लेकर ही विश्वास आया था।

दसवां दृष्टान्त अक्रूरजी का।

इसके बाद अक्रूर जी का भी हाल सुनिये कि इनको भी श्रीकृष्ण महाराज की निस्बत पहिले कैसी अटल भक्ति थी और जाहिरन् ऐसा मालूम होता था कि ये अक्रूर जी सारे ही भक्तों के शिरोमणि बन कर श्रीकृष्ण महाराज में बड़ा ही निष्कपट प्रेम रखने वाले अद्वितीय श्रद्धावान् भक्त हैं क्योंकि देखिये जब कंस ने इनको श्रीकृष्ण जी और उनके बड़े भाई बलरामजी

को बुलाने के लिये भेजा तो वे मथुरा से गोकुल को रथ लेकर बड़े ही प्रेम और उत्साह के साथ रवाना हुए और रास्ते में अत्यन्त प्रेम अन्दर में पैदा होने की वजह से इनको श्रीकृष्ण भगवान् के विराट् रूप के दर्शन हो जाने का भी सौभाग्य प्राप्त हो गया और ग्राम के समीप पहुँचने पर इन्होंने रथ को त्याग सीने के भर चल कर श्रीकृष्णजी से मिलने में अपने को बड़ा भारी (अतिशय) प्रेम प्रीतिवान् होने का काफ़ी सबूत दिया है और पास पहुँचकर दर्शन करते ही इन्होंने जैसी अपनी श्रद्धा भक्ति या प्रीति प्रतीति व उमंग जाहिर की है वह बयान से बाहर है मगर परमात्मा की मौज या काल कर्म और मन माया का चक्कर व प्रभाव या चाहे निज खोटे भाग्य उदय होने के कारण वे ही अक्रूर जी श्रीकृष्णजी की तरफ़ से निहायत ही अश्रद्धावान् हो गये हैं। अलावा इसके कुसंग के प्रताप से इतने महामलिन चित्त यानी नीच घाट पर उतर आये कि श्री कृष्णजी से विमुख होकर सतधन्वा और कृतवर्मा से मिलकर सत्राजित की कन्या सत्यभामा और मणि हासिल करने की अब गुप्त सलाहें करने लगे और सत धन्वा और कृतवर्मा के साथ दिन रात इसी ताक में फिरते रहे कि किसी प्रकार यह दोनों वस्तुएँ हमारे हाथ लगें तो सफल मनोरथ हों। एक दिन श्रीकृष्ण जी और उनके बड़े भाई बलराम जी जब किसी कार्यवश पाण्डवों के यहाँ हस्तिनापुर को चले गये तो पीछा ताक कर इन्होंने कृतवर्मा से (निज अन्तरीय प्रबल लोभ व काम के नशे में) उस सत्राजित को मरवा कर मणि को अपने

कब्जे में कर भी लिया मगर सत्यभामा इनके हाथ नहीं आई पीछे उस मणि को छिपाने या पचाने के लिये ये अक्रूर जी अपना समय यज्ञादि क्रियाओं में बिताने लगे। यह सब कथा विस्तार के साथ भागवत में लिखी हुई है इसलिये पाठकगण इन अक्रूर जी के आन्तरिक भाव और ज़ाहिरन् कार्रवाई को उपरोक्त प्रसंग से मुलाहिज़ा कर विचार देखें कि क्या सच्चे सगुणावतार स्वरूप श्रीकृष्ण महाराज की असलियत का यथार्थ बोध कुछ भी अक्रूर जी को था? यानी कुछ दिन अन्तरी अभ्यास करके क्या इन्होंने पहिले उस निर्गुण निराकार का अपने गुप्त नेत्रों द्वारा दर्शन किया था? और फिर उसी भण्डार से धार या किरणरूप होकर निकले हुए इस सगुणरूप को क्या आन्तरिक दृष्टि से पहिचाना था? अर्थात् कुछ भी इनको पता नहीं था कि ये कृष्ण महाराज असल में कौन हैं और कहाँ से इनका आगवन किस प्रयोजन को लेकर हुआ है। जो कुछ ज्ञान पहिले था वह सब श्रीकृष्ण जी के चरित्रों को सुन सुनाकर ऊपरी कच्ची समझ बूझ थी। आगे जब श्रीकृष्ण महाराज ने निजी नरचोला से सुगम अगम चरित्र किये यानी नर-लीलाएँ दिखाईं तिनको देख देख और सुन सुन कर वह सारा ही हवा हो गया यानी कुछ न रहा। अगर कोई इसे न माने तो हम उससे यही सवाल करेंगे कि जो अक्रूर जी को सगुणावतार स्वरूप श्रीकृष्ण जी की अपरोक्ष प्रकार से दृढ़ परखपहिचान कुछ भी होती तो उपरोक्त रूप से ऐसी निन्दित कार्रवाई करने का साहस वह क्यों करते और जो कुसंग के प्रताप से अज्ञानता के वश निज इष्टदेव

श्रीकृष्ण महाराज से विमुख होकर ऐसा घृणित कृत्य बन भी गया था तो फिर जल्दी ही होश में आकर श्रीकृष्ण जी के पूछने पर उस मणि को अपने पास बताने में उन्हें आना कानी न करनी चाहिये थी। बल्कि पूछने पर फ़ौरन् ही सच सच हाल बयान करके श्रीकृष्ण महाराज से निज अपराध क्षमा कराके अपने अन्दर की छिपी हुई निहायत मैली वासना और कपट कुचाल की कार्रवाई की निस्बत चित्त में बहुत कुछ झुरना पछताना और शर्माना चाहिये था। यानी जैसे बनता तैसे रो पीट कर निज दोषों से बरी होने का उपाय अक्रूर जी को ज़रूर करना चाहिये था मगर कुछ भी ऐसी कार्रवाई उनसे नहीं बनी है। और न उसकी बाबत् भागवतादि पुराण में कहीं कुछ लिखा ही हुआ है। इससे साबित होता है कि अक्रूर जी को अपने समय में सगुण भगवान् श्रीकृष्ण जी की भ्रम सन्देह से रहित (दर्शन करते व संग साथ में रहते हुए) कुछ भी जांच परख असली नहीं हुई। दूसरा बहुत अच्छा सबक़ इन अक्रूर जी के प्रसंग से यह मिलता है कि निपट संसारी लोग और कुछ अंधविश्वासी पढ़े-लिखे पण्डित और कोई कोई वाचक और कच्चे परमार्थी जिज्ञासु भक्त वक्त के सच्चे साध सन्त व अवतारों की निस्बत यह कहा कहते हैं कि हमें कैसे विश्वास हो कि ये सच्चे साधसन्त या अवतार हैं। कोई करामात या अपने पूरे होने का ऐसा सबूत भी तो दिखलावें कि जिससे हमारी प्रीति प्रतीति उनकी निस्बत पहले पैदा होकर फिर हमेशा दृढ़ व क़ायम बनी रहे। ऐसी चमत्कारी कोई अलौकिक घटना हमें विश्वासदायक ज़रूर ही

दिखानी चाहिये। इस प्रकार आजकल के तमाशगीर इन अक्रूर जी के उपरोक्त बयान किये हुए हाल से क्या अपने लिये यह नतीजा निकालना नहीं जानते हैं कि अक्रूर जी ने क्या श्रीकृष्ण जी की तरफ़ से विश्वासदायक कोई चमत्कार न देखा था यानी घर चलते हुए रास्ते के बीच में ही उन्हें तो कई एक अमानुषीय घटनाओं का गुप्त प्रकट निज नेत्रों से ही बहुत अच्छी तरह नज़ारा होता रहा था और आगे ज़िन्दगी भर में सैकड़ों कार्रवाइयां उन अवतारी श्रीकृष्ण जी की तरफ़ से इनको ऐसी अलौकिक सहज तौर से बनी हुई दिखाई दी होंगी कि जिनकी निस्बत आज कल लोग पुरानी पोथियों में पढ़कर आश्चर्य से दाँतों तले उँगुली दबाते हैं और इस वर्त्तमानकाल के भोले भगत उन्हीं के सहारे पिछले सगुणावतार स्वरूप श्रीकृष्ण जी के भक्त या उपासक होने का दावा करते हैं। अभिप्राय यह है कि जब तक किसी जीव को आन्तरिक अनुभव दृष्टि रूप ऋत्म्भरा प्रज्ञा चिरकाल के निरन्तर अन्तरी सच्चे अभ्यास द्वारा हासिल न होगी तब तक चाहे हजारों करामात या चमत्कार व मौजजे किसी अनधिकारी अंधे जीव को कोई महापुरुष या साध, सन्त, फ़क़ीर, महात्मा निज तरफ़ से दिखलावें मगर अक्रूर जी की तरह निजअन्तरी काम क्रोधादि विकारों से लबालब भरे हुए हृदय वाले इस जीव पर कुछ भी असर नहीं हो सकता है क्योंकि बग़ैर अन्तरी सफ़ाई हुए मन माया व काल कर्म और सुख दुख या इन्द्रियों के भोगों की प्रबल वायु के बघूरों (यानी झोकों) में पड़ कर किसी अनाभ्यासी जीव की क्या जुरंत है कि कुछ भी अपनी

सँभाल कर सके और किसी कामिल पुरुष की दिखाई हुई करामात को वक्त पर याद रख सके। ऐसा हज़ारों दफ़े अगले या पिछले ज़माने में हुआ है। हमने कोई बना के बात नहीं लिखी है। फिर इन अनाधिकारियों की उपरोक्त प्रकार से (सच्चे परमार्थ के मुआमले में) किसी सच्चे साध सन्त से करामात की चाह रखना क्या बिल्कुल ही नाजायज़ इच्छा या माँग नहीं समझनी चाहिये? भला कोई सच्चे महापुरुष ऐसी फ़िज़ूल कार्रवाई को क्यों पसन्द करेंगे उन्हें किसी से कुछ लोभ लालच या कोई प्रयोजन तो है नहीं कि जिससे निपट दुनियादारों को निज तरफ़ से कोई मौजज़ा या चमत्कार दिखलावें। अलबत्ता यह ज़रूर है कि सच्चे मालिक के दर्शनों के पिपासुओं की प्यास बुझाने के लिये उनका अवतार इस पृथ्वी पर हुआ है। उसके मुतअल्लिक़ जो परमार्थिक करामातें हैं तिनको अवश्य ही निज प्रेमी जनों के वास्ते हमेशा वह अमल में लाते हैं और जो कार्रवाई किसी जीव के सच्चे परमार्थ के हासिल होने में निहायत हर्ज या विघ्न डालने वाली है उसको वह हर्गिज़ भी सरन्जाम नहीं देंगे। अच्छा अब इस प्रसंग की बाहरी कथा से मुख फेर पाठकगण उसी ऊपरी प्रसंग में आकर इस बात का विचार करें कि इन अक्रूर जी का दृष्टान्त पिछले अवतारों की असली परख पहिचान न होने में (मुनि मन मोह और भ्रमकारी) गुसाईं जी के आदि के उस दोहे की निचली कड़ी के अर्थ को पूरा करता है कि नहीं। सो अगर ग़ौर की दृष्टि से देखा जायगा तो औरों के मुक़ाबिले में बहुत अच्छी तरह यह जनाता है कि

पिछले ज़माने में उस वक़्त के सगुण अवतारों के शारीरिक व मानसिक व्यवहार बर्ताव में पुराने समय के भक्त भी धोखा खाकर असलियत से ग़ाफ़िल हो उलटी कार्रवाइयाँ करने लग जाते थे। इससे कुछ भी उन लोगों को उस वक़्त के महापुरुषों की परख पहिचान न होने पाती थी। यही बात अब अन्त में निचोड़ रूप से जाहिर होती है। इसे और ज्यादा अब क्या बढ़ावें क्योंकि आगे अभी कुछ और भी इस मामले में सांसारिक लोगों की आँखों के परदे दूर करने के वास्ते कहना है।

ग्यारहवां दृष्टान्त अर्जुन जी का।

अच्छा अब तीसरे द्वापुरी दृष्टान्त के पूरा करने के वास्ते श्रीकृष्ण महाराज के सबसे उत्तम प्रेमी और अनन्य भक्त अर्जुन को ही लेते हैं। देखिये कि अर्जुन जी श्री कृष्ण महाराज के संग साथ में दिन रात हमेशा इस प्रकार रहते थे कि दोनों एक साथ ही खाते पीते उठते बैठते और चलते फिरते व सोते जागते थे यानी हर एक व्यवहार दोनों का संग संग बड़े ही प्रेम के साथ होता था और यह भी न था कि अर्जुन बिल्कुल नादान ही हों सो भी नहीं बल्कि आजकल के जीवों के मुक़ाबिले में तो नर नारायण रूप से उनकी भी गिनती अवतारों में ही थी और वैसे भी बड़े शूरवीर महान् पराक्रमी निहायत अच्छी रहनी गहनी वाले, विद्या बुद्धिमान् और श्रीकृष्ण भगवान् के बड़े ही उत्तम दर्जे के प्रेमी सखा व भक्त थे। मगर विश्वरूप

दर्शन होने से पेश्तर उनको भी सच्चे सगुणावतार स्वरूप श्रीकृष्ण महाराज की संशय और भ्रम से रहित यथार्थ दृढ़ परख पहिचान न थी यानी ऐसा नहीं था कि सच्चे योगीश्वरों की तरह अर्जुन श्रीकृष्ण जी की असलियत से पूरे अर्थात् उनके मूल स्थान रूप भण्डार से वाक़िफ़कार हो कर इस सगुण धार के भी असली जानकार हों सो यह गति उनको भी नहीं हासिल थी। वैसे प्रेमी तो बहुत श्रेष्ठ थे लेकिन ऊपर कही हुई गति उनको प्राप्त न थी। इस बात के सबूत में श्रीकृष्ण महाराज ही के मुखारविंद से निकले हुए गीता के अध्याय ११ श्लोक ४१ व ४२ वें को प्रिय श्रोतागणों की जानकारी के लिये नीचे लिखे देते हैं। इससे विचारवानों को एक बात यह भी बहुत अच्छी तरह ज़हननशीन हो जायगी कि सच्चे सगुण अवतार स्वरूप पिछले अगले महा पुरुषों की सच्ची परख पहिचान होनी (चाहे कोई अर्जुन सरीखा उनका दिन रात का संगी साथी हो) बग़ैर उनकी अतीव दया मेहर के बहुत ही मुश्किल है यानी चाहे कोई खास जीव हो या पढ़ा लिखा विद्वान् पंडित हो या चाहे मामूली इन्सान हो मगर इस मानुषीय हृदय के घाट पर विद्या की सहायता से जगी हुई बुद्धि की यह सामर्थ्य या शक्ति नहीं है कि कामिल पुरुषों की गति का कुछ भी अन्दाज़ या निश्चय कर सके सो हर्गिज़ भी कुछ पता नहीं पा सकती है। अच्छा अब उन दो श्लोकों को भावार्थ सहित सुनिये—

मंत्र

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं,
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति !
अजानता महिमानं तवेदं,
मया प्रमादात् प्रणयेन वापि॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोसि,
विहारशय्या सनभोजनेषु ।
एकोऽथ वा प्यच्युत तत्समक्षं,
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥

अर्थ यह है कि अर्जुन श्रीकृष्ण महाराज को सदा से निज प्यारा सखा ही मानते थे और हँसी चौहल या मख़ौल के वक्त (परस्पर प्यारे मित्रों की भाँति) जो चाहते वही उनके सामने बेतकल्लुफ़ कह डालते थे। इस पर कभी कभी तो कृष्ण महाराज भी आप ही छेड़छाड़ करके उत्तर देने लग जाते थे और कभी कभी हँसकर चुप ही साध जाते थे। ऐसी दिल्लगी की मनोरंजक बातें कभी कभी तो अकेले में इन दोनों की हुआ करती थीं और कभी मौक़ा पाकर सबके सामनें समूह में भी अर्जुन छेड़खानी कर डालते थे। अगर यह पूछो कि वह कौनसी बातें बेजा अर्जुन ने श्री कृष्ण जी से कही थीं कि जिससे फिर पीछे माफ़ी माँगनी पड़ी थी सो सुनिये कि अर्जुन उन अत्यंत प्रभावशाली संपूर्ण जगत के कर्त्ता-धर्ता श्री कृष्ण जी की महान् उत्तम लियाक़त के

विरुद्ध ऐसे ऐसे भद्दे या कड़े लफ़्ज़ों से उनको व्यवहार में टेरता बुलाता था कि हे सखा तू क्या करता है, हे कृष्ण मेरे पास आ हे यादव क्या तू नहीं सुनता है। बस यही अर्जुन की प्रेम उद्दंडता थी और इसी के लिये वह पीछे बहुत कुछ शुरु पछताया है। कौरव-पांडव-युद्ध प्रारम्भ के समय मोह में कातर हो अर्जुन ने जब हथियार फेंक दिये और युद्ध का करना अपने लिये उसने महान् पाप कर्म और निहायत अनिष्ट फलदायक समझा तब श्रीकृष्ण महाराज ने अनेक प्रकार से उनको समझाया बुझाया और बहुत सी बातें लोक परलोक और आत्मा परमात्मा के मुतल्लिक़ सच्चो ज्ञानदायक उसे सुनाई। जिन सब को इकट्ठा करके श्री व्यासजी ने यह गीता शास्त्र बना दिया है। मगर अर्जुन के ऊपर श्री कृष्ण जी की कहनका जब कुछ भी लाभदायक असर नहीं हुआ तब परब्रह्म के अवतार श्री कृष्ण महाराज ने अर्जुन को उसके अंतरी दिव्य नेत्र द्वारा अपने विराट् स्वरूप के दर्शन कराने की दया फ़रमाई यानी अर्जुन को वह सर्व विश्वाधार अपना विराट् रूप दिखलाया। उस वक़्त उसको कृष्ण महाराज की परम उच्चता यानी असलियत का ठीक ठीक सच्चा ज्ञान हुआ और अंतरी नेत्र खुल जाने से होश हवास में आजाने से यानी नई यथार्थ जाग्रति पैदा हो जाने की वजह से उसको अब यह अच्छी तरह समझ आई कि ओ हो ये कृष्ण महाराज तो तमाम चराचर विश्व को निज अन्दर में ही उत्पन्न और लय करे बैठे हैं और उस विराट् रूप की अनन्त व अपार महिमा का अपने ज्ञान चक्षु द्वारा बारम्बार निरीक्षण करके अर्जुन निज अंदर में बड़ा

भारी चकित हुआ। अब उसको विल्कुल दृढ़ निश्चय रूप अन्दर में यह पक्का ज्ञान हो गया कि ये कृष्ण भगवान् सचमुच ही निर्गुण निराकार परब्रह्म के सगुण अवतार हैं जिनको मैं हमेशा से दो टाँग वाला मामूली मनुष्य ही ख्याल करता था और निज प्यारा मित्र या सखा ही मानता या जानता था। वह तो आज सारी विश्व के रचने और पालन व संहार करने वाले दिखाई दे रहे हैं। इस तरह पर अपने मन में विचार करता हुआ अर्जुन अपनी पिछली (निर्बुद्धि बालक की तरह) अयोग्य बोलचाल या करतूत पर अब बहुत ही अन्दर में शर्मिन्दा हो रहा है और निज अज्ञान-जन्य मूर्खता के सबब से बना हुआ जो बुरा कर्तव्य है उसके प्रायश्चित्त के लिये अनेक तरह से अपने अन्दर में झुरता और पछताता है और उस पापरूप दोष से बरी होने के वास्ते श्रीकृष्ण महाराज से अपराध क्षमा कराने की निम्नोक्त मंत्रानुसार प्रार्थना कर रहा है:—

श्लोक

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं,
प्रसादयेत्वाम् हमीसमीड्यम् ॥
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्यूः।
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

अर्थ यह है कि श्रीकृष्ण महाराज के विराट रूप से बहुत कुछ भयभीत होता हुआ अर्जुन इस प्रकार विनती करने लगा कि हे प्रभो! आप इस चराचर लोक के पिता हो पूजने के योग्य

गुरुओं से भी आप महान् पूज्यरूप गुरुतर हो और आपके समान या अधिक तीनों लोक में भी कोई नहीं है। आप अनुपम प्रभाव और शक्ति वाले हो सो हे अनन्त देवेश! दोनों हाथ जोड़ कर मेरा बारम्बार आपके लिये प्रणाम है। आप मेरे ऊपर निज कृपा करके पुत्र का अपराध पिता जैसे और सच्चे मित्र का (कभी भूलजन्य) अपराध मित्र जैसे और पुरुष निज पतिव्रता आज्ञाकारिणी सुशीला स्त्री का कोई भूल से बना हुआ अपराध जैसे क्षमा कर देता है तैसे ही मेरे पिछले मूर्खताजन्य अपराधों (कुसूरों) को आप अब क्षमा ही कीजिये। क्योंकि वह कुसूर आपकी इस भारी महिमा व प्रभाव को न जान बूझ कर ही अनसमझता के सबब से मुझसे भूल में ही बन पड़े हैं। इस वास्ते हे प्रभो! अब मेरे उन पिछले अनुचित व्यवहारी बोलचाल या बर्तावजन्य करतूतों की तरफ़ न देख कर सब अपराध जल्द ही क्षमा कीजिये। मैं आपसे इस वक्त, बहुत कुछ डर खा रहा हूँ क्योंकि इस समय आप निहायत ही भयंकर मूर्त्तिमान मेरे को भासमान हो रहे हो यानी दिखाई दे रहे हो। इस प्रकार का रूप पहले मैंने आपका कभी नहीं देखा था जैसा कि अब सामने निरीक्षण कर रहा हूँ। इसलिये अब आप कृपा करके इस अनन्त मुख, भुजा और पाद वाले स्वरूप को छिपाकर मुझे वही अपना सौम्य रूप दिखलाइये क्योंकि मुझे आपके इस स्वरूप से बड़ा भारी भय हो रहा है इससे आप शान्त हूजिये। हमारे प्रिय पाठकगण इससे अब अर्जुन की दोनों समय की बोधिक व अबोधिक अवस्था का बखूबी अन्दाजा लगा सकते हैं और यह

भी सोच विचार कर सकते हैं कि अर्जुन को पहले श्रीकृष्ण जी की असलियत से इतनी जानकारी न थी जितनी अब अन्दर में दृढ़ परख पहिचान अच्छी तरह निज गुप्त नत्रों द्वारा हुई है। एक और भी बात यहाँ पर यह याद रखने लायक़ है कि अर्जुन को श्रीकृष्ण जी के असल स्वरूप या महान् प्रभावशाली इस विराट् स्वरूप के दर्शन करने की सामर्थ्य भी उस दिव्यचक्षु या तीसरे गुप्त नेत्र द्वारा ही हुई है। यही नहीं कि उसने इन अपने स्थूल चर्मनेत्रों की मारफ़त ही उस जगदाधार विश्व रूप का निरीक्षण किया हो सो नामुमकिन है और अब ज्यादा क्या बढ़ायें। प्रसंग ही पर आकर श्रोतागणों को गौर करने के लिये फिर उकसाते हैं। देखिये कि द्वापर से पवित्र युग में अर्जुन से अनन्य प्रेमी भक्त को भी परब्रह्म परमात्मा के सच्चे सगुण अवतार स्वरूप श्रीकृष्ण महाराज की (विराट् रूप देखने से पेश्तर) कुछ भी असली परख पहिचान नहीं हुई। गौर का मुक़ाम है कि निज वर्तमानकाल काल में भेदोपासना के सच्चे फल सगुण ब्रह्म रूप श्री कृष्ण जी की (उठने बैठने सोने जागने आदि में हमेशा दिन रात साथ ही रहने वाले) अर्जुन को अपनी इस भौतिक अक़्ल द्वारा जब कुछ भी असली जांच परख नहीं आई तब फिर इतर जो आजकल के जीव चाहे अक्षरवेत्ता तोता ही क्यों न हों मगर जन्म जन्मान्तर के पापरूप मैल की कीचड़ से सनी हुई बुद्धि द्वारा घर बैठे ही किसी वर्तमान सच्चे साधसन्त महात्माओं की और पिछले राम कृष्णादि सगुण अवतारों की पोथियों की पढ़ी या सुनी सुनाई बातों से क्या असली जानकारी

हासिल कर सकते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं हो सकती क्योंकि पहले तो इन लोगों को सत् असत् का ही यथार्थ ठीक ठीक तजरुबा नहीं है और दूसरे किसी अन्तरी अभ्यासी अनुभवी पुरुष या सच्चे साध सन्त अवतारों और फ़क़ीरों के सामने व मुक़ाबिले में इन अक्षरवेत्ता विद्या बुद्धिधारी वाचक पण्डितों की गिनती भी महामूर्खों में ही होगी। क्योंकि इस स्थूल बुद्धि के घाट पर ये पढ़े पशु हमेशा अन्धों की भाँति पुराने शास्त्रों के उन अक्षररूपी लकड़ियों के द्वारा यानी सहारे से ही टटोलना रास्ता तै करने के कमरबन्ध पुरुषार्थी हैं। अगर ग्रन्थों के वाक्यों का सहारा इनका अलग कर दिया जाय तो वहीं अन्धों की तरह खड़े रह जाते हैं। तीसरे जिन पिछले गुप्त हुए राम कृष्णादि अवतारों की उपासना ये लोग अन्ध विश्वासी बन कर कर रहे हैं उनके दर्शन होने की तो क्या चलाई है (क्योंकि वह तो अब इस पृथ्वी पर मौजूद ही नहीं हैं) किसी वर्त्तमानी सच्चे कामिल या आमिल महा पुरुष की संग सोहबत करने का मौक़ा भी इन लोगों को कुछ दिन के वास्ते घर छोड़ कर नहीं हुआ है क्योंकि ये अन्धविश्वासी नादान लोग अहंकारवश अपने स्वल्प वाचक ज्ञान का कुएँ के मेंढक की भांति ऐसा घमण्ड रखते हैं कि मानो इससे ज्यादा कोई ज्ञान ही क्या सकता है। और पोथियों के इस वाचक ज्ञान के नशे में ये लोग बड़ी ऊँची डींगें मार मार कर राम कृष्णादि पिछले सगुण अवतारों की निस्बत निज मुख से ऐसे ऐसे वचन शास्त्रों के बोलते हैं और उसी पुरानी शास्त्रिक टेक पक्ष पकड़ी हुई

वाणी द्वारा इस तरह की अपनी दृढ़ राय क़ायम करते हैं कि मानो ये ही उन राम कृष्णादि के धाम से उतर कर आये हुए हैं। चौथे किसी महापुरुष की कृपा से निज अंतरी सच्चे सहज योग व योगाभ्यास का मिलना और मन मारकर उस अभ्यास का करना तो दूर किनार रहा यानी यह तो इन लोगों से बन ही कब सकता है परन्तु नाममात्र से यानी इल्मी तौर पर भी इन लोगों को उससे वाक़िफ़कारी हासिल नहीं है क्योंकि इनकी निज बुद्धि के अन्तरी नेत्रों पर हमेशा अविद्या रूपी लौकिक विद्या के अहङ्कार की बड़ी मजबूत पट्टी बँधी रहती है। ये वाचक लोग भी उसी को दृढ़ कर बांधे हुए तेली के बैल की भाँति निज तन, मन इन्द्रियों के लालनार्थ चारों ओर सदा ही घूमते रहते हैं—मगर अपनी आँखों में आँसुओं को डबडबा कर दिखाने के ऊपरी स्वांगों से और वचनों से दूसरे भोले भाले लोगों या अपने सरीखे भ्रमी भूतों को दिखाते यही हैं कि जैसा अत्यन्त प्रेम और ऊँचा ज्ञान राम कृष्णादि सगुण अवतारों का इस वक्त हमको है वैसा क्या अन्य किसी मनुष्य को कभी हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता। पाँचवें ये लोग यह समझते हैं या मुख से कहते हैं कि यह जो आजकल धातु पत्थर की बनी हुई या चित्रों में चित्रित जड़ और नक़ली राम कृष्णादि के नाम वाली प्रतिमा हैं वही पिछले सगुण अवतारों की सच्ची प्रतीक रूप से उपासना करने योग्य निज इष्ट देव हैं। सो हम लोग अपने सनातन धर्म की रू से इन्हीं मूर्त्तियों के निज मनमाने अर्चन, पूजन द्वारा उन्हीं त्रेता द्वापर युग वाले बीते हुए सच्चे राम कृष्णादि अवतारों से मरने के

बाद मिलकर मुक्त हो जायँगे-और फिर लौटकर जन्म मरण वाले इस मर्त्य लोक में अब नहीं आ सकते हैं क्योंकि हमारी राम-कृष्ण सगुण अवतारों की सगुण उपासना और उनका ज्ञान प्राचीन ऋषि मुनियों के बनाये हुए शास्त्रोक्त होने से यथार्थ ही है और अंतर्यामी राम कृष्ण भी सब जगह व्यापक होने से हर एक के घट घट की सारी बातों को जानने वाले हैं, वह दयालु प्रभु हमारे अंतरी भाव और प्रेम को क्यों नहीं पहिचानेंगे ? इत्यादि रूप से ये लोग ऐसे ऐसे निज मन गढंत अनेकों प्रकार के वाक्य अपने मनोरञ्जन के लिये कहते सुनते हुए झूठे मनोरथी स्वप्नों में अपनी आयु व्यतीत करते रहते हैं मगर इन वर्तमानी वाचक प्रेमियों या सगुण भक्तों की बुद्धि पर झूठी टेक और पक्षपात रूपी राक्षसो ने मूर्खता और कुभाग्य का ऐसा मजबूत परदा या ढक्कन डाल रक्खा है कि निज विचार की अंदरी दृष्टि से यह नहीं देख सकते हैं कि जब पिछले जमाने के अर्जुन और वशिष्ठादि सरीखे प्रेमी भक्त और परमार्थी विद्वानों का उन सगुण अवतारों की मौजूदगी ही में पूर्वोक्त प्रकार से ऐसा हाल रहा है कि जिसके बयान करने में यह 'अवतार-बोध' एक छोटा सा ग्रन्थ ही बन गया है तब उपरोक्त उपासकों और वाचक परमार्थियों की उपासना या ज्ञान और सगुण अवतारों की उक्त जानकारी या समझदारी की निस्वत अब पाठक ही निज अंदर में फ़ैसला करलें कि क्या हैसियत रखती है। हम अब ज्यादा स्पष्ट क्या लिखें ये लोग यह नहीं सोचते विचारते हैं कि पुराने जमाने के प्रेमी सगुण भक्त निज भगवंत रूप सगुण अवतारों के विद्यमान होने के कारण सच्चे

भक्त थे जो कि अनेकों बार उन महापुरुषों की अलौकिक सामर्थ्य और अचिंत शक्ति के असाधारण चमत्कार भी निज जिन्दगी में देख चुके थे और वह (खुद) आप और वह समय भी आजकल के लोगों और इस (कलियुग) समय के मुक़ाबिले में महान् पवित्र थे। मगर गुसाईं तुलसीदासजी के आदि के दोहे की निचली कड़ी में कहे हुए अर्थ के अनुसार उन पिछले सगुण अवतारों के सुगम अगम चरित्रों को देख देख और सुन सुन कर वह लोग ऐसे ऐसे धोखे खा जाते थे कि जिन्दगी भर कुछ भी उनको महा पुरुषों की असली विश्वसनीय परख पहिचान न होने पाती थी। इस बात के सबूत में ही हमने पिछले जमाने के नारद, जनक, गरुड़, वशिष्ट, ब्रह्मा, अक्रूर और अर्जुन आदि से प्रेमी भक्तों को उदाहरण के तौर पर इसमें लिखा है। यद्यपि छोटे मोटे प्रेमी भक्त तो बहुत से थे तथापि जब इन बड़े बड़े प्रेमियों का उपरोक्त प्रकार से यह हाल है तब उन नीचे दर्जे वालों का वृत्तांत क्या बयान करें। विचारवान् निज बुद्धि से खुद ही समझ लेंगे। तात्पर्य यह है कि प्रधान प्रधान प्रेमी परमार्थी पुरुषों ही के हवाले (दृष्टान्त) दिये हैं उस वक्त के बहुत से मामूली लोगों को छोड़ छोड़ कर यह बात दृढ़ाई है कि अगले पिछले सगुण अवतारी महापुरुषों की परख पहिचान होजाने का मामला ऐसा सहज नहीं है जैसा कि आजकल के विद्वान् या सगुण भक्त निज अंदर में समझ रहे हैं क्योंकि यह एक मामूली सा ही तजरुबा है कि पढ़े लिखे किसी अच्छे विद्वान् वैयाकरणी पंडित की कोई अच्छी तरह

व्याकरण का पढ़ा लिखा विद्वान् पुरुष ही ठीक ठीक यथार्थ जाँच परख सकता है और जो अनपढ़ मूर्ख पशु है या अर्द्ध पंडित है उसकी मजाल नहीं है कि उसकी विद्वत्ता का एक बाल बराबर भी हाल निज बुद्धि से समझ सके। अनुमान से उसकी महिमा के अनर्गल ढकोसले चाहे तैसे निज मुख से हाँकता रहे मगर बाक़ायदा साधनों सहित उसकी विद्या की असलियत का पूरा २ ज्ञान किसी अनपढ़ शख्स के अंदर में होना नामुमकिन है। बस यही हाल अगले पिछले और वक्त के सगुण अवतार और सच्चे साध संतों की सच्ची परख पहिचान हो जाने के बारे में भी विचार वानों को समझ लेना चाहिये।

सगुण अवतार व सच्चे साध संतों की असलियत व आमद का बयान

अब यहाँ पर हमारे दिल में यह आता है कि जिस निर्गुण सगुण का वर्णन इस लेख में आदि से लेकर अंत तक हमने किया है उसका ठीक ठीक भेद सच्चे संतों के बयान किये हुए तरीक़े से पहिले पाठकों को निरूपण कर दिखावें तब पीछे कुछ अन्य प्रसंग चलाने की कोशिश करें। देखिये कि सच्चे महात्माओं ने इस तमाम रचना को तीन बड़े हिस्सों में तक़सीम किया है—एक सबसे बड़ा दर्जा तो ख़ालिस निर्मल चेतन देश का बताया है और दूसरा बीच का दर्जा निर्मल चेतन और शुद्ध माया की मिलौनी का ब्रह्मांड देश कहा है और तीसरा सबसे नीचा यह पिंड देश का मुक़ाम निर्मल चेतन पर मलिन यानी मोटी माया के पर्दों

वाला बयान किया है। इन तीनों बड़े दर्जों में अन्य भी कई छोटे हिस्से हैं जो माया की शुद्धता और मलिनता की कमी-बेशी की वजह से हैं। मगर सत् चित् आनन्द स्वरूप निर्मल चेतन सब में एक सा ही है और ऊपर व नीचे के मुक़ामों में रचना के लिहाज़ से यह क़ायदा रक्खा गया है कि नीचे की तमाम सृष्टि की सँभाल उससे ऊपर के दर्जे वाले चेतन या मालिक व धनी की मारफ़त हो रही है यानी उन उपरोक्त तीनों बड़े दर्जों में अपने अपने मुक़ाम की रचना को सँभालने वाला एक एक धनी मौजूद है। वह ही अपने से नीचे दर्जे वाली रचना के धनी को ताक़त दे उसकी हर समय रक्षा और सँभाल कर रहा है। इसी सिल्सिले में जब कभी मुनासिब होता है यानी पिण्ड देश की दशा सुधारने के लिये और उससे ऊपर के अपने दर्जे या देश का भेद देने के वास्ते और उस मुक़ाम में दाख़िल कराने वाले जो नियम हैं उनको कबूल करके अगर जो कोई अमल में लावें तो उनको अपने ऊँचे मुक़ाम पर ले जाने के वास्ते उस बीच के दर्जे रूप ब्रह्माण्ड से वहाँ का धनी या उस देश की अन्य कोई ऊँची सुरत यहाँ पर इस पिंड देश में निज किरणियों द्वारा अपनी इच्छा से या अपने मालिक की आज्ञा से नरशरीर धारण करती है जिसको सगुणावतार कहते हैं। इसी लिहाज़ से पुराने ज़माने के राम कृष्णादि भी सगुणावतार पुकारे गये और उस सगुण अवतार ने निज वक़्त में प्रकट हो कर इस नीचे की रचना में बसने वाले जीवों को निहायत कष्टदायक मुक़ाम में आसक्त देख कर यह शिक्षा या उपदेश किया कि ऐ नीचे दर्जे

वाले जीवो ! तुम हमारा कहना मान इस अपनी अतिशय मलिन और दुखदायक मसाले वाली रचना का मोह त्याग के ऊपर के हमारे मुक़ाम के धनी में प्रेम प्रतीति लाओ तो यहाँ से तुम्हारा हमेशा को छुटकारा हो जायगा और तुम यहाँ के जन्म मरण के चक्कर से हमेशा के लिये निकल जाओगे मगर वह हमारे ऊँचे देश वाला धनी अगुण अरूप होने की वजह से तुम्हारे ख्याल में भी नहीं आ सकता है इस वास्ते तुम हमारी सलाह मान कर हमारे ही चरणों में लग जाओ। क्योंकि हम में और हमारे धनी में समुद्र और उसकी लहर या सूर्य और उसकी किरण या जल और बर्फ़ व ओलों में जैसे नाममात्र का भेद है बस इतना ही फ़र्क़ समझिये कि सत् चित् आनन्द स्वरूप वह ऊँचे के मुक़ाम वाला हमारा धनी तो निज धाम में विराजमान् अपने धाम की बदस्तूर सँभाल करता रहता है, मगर ज्वार भाटे की तरह उससे निकली हुई चेतन लहर या किरण ने यहाँ पर यह मनुष्य-चोला इख़्तियार कर लिया है सो हम उसी के समान सच्चिदानन्द गुणों वाले लहर या किरणरूपी सगुण अवतार हैं। हमारे और उसके बीच में समुद्र की लहर या सूर्य की किरण के सदृश्य किसी भी तरह का अन्तर या परदा नहीं है। इससे हमारी शरण लेना आप लोगों का उसी धनी के प्रेम प्रीतिवान् चरणसेवक बनने के लिये ऐन जायज़ ही है और उससे मिलने का निहायत आसान तरीक़ा यही है। वही देखिये कि इस उक्त कथन के मुताबिक़ सगुण अवतारों की बाबत और उन्होंने जीवों को जो अपनी ही चरण शरण इख़्तियार करने

की शिक्षा निज वक्त में की है उसकी निस्बत गुसाईं जी ने अपने रामायण और व्यास भगवान् ने अपने श्रीमद्भगवत्गीता में इस प्रकार चौपाइयों और श्लोकों से कथन किया है कि:—

चौपाई ।

अगुणहि सगुणहिं नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा ॥
अगुण अरूप अलख अज जोई । भक्त प्रेम वश सगुण सो होई ॥
जो गुण रहित सगुण सो कैसे । जल हिम उपल विलग नहिं जैसे ॥

इत्यादि रूप से यह तो निर्गुण और सगुण की एकता के निस्बत बयान किया है कि जो सत्वादि तीनों गुणों से रहित सच्चिदानान्द स्वरुप निर्गुण है उसी के समान सच्चिदानन्द गुणों वाली (उन पिछले राम कृष्णादि नामधारी शरीरों के अन्दर) यह सगुण धार है। इसमें और उस निर्गुण में जैसें सर्दी की वजह से जल और वर्फ़ या ओलों में नाम मात्र का फ़र्क़ दिखलाई देता है वैसे ही उस लहर या किरण को शरीर के अन्दर आने की वजह से नाममात्र का ही भेद सगुण और निर्गुण में बुद्धिमानों को समझना चाहिये। वास्तव में कोई फ़र्क़ इन दोनों में नहीं है और पिछले ज़माने के सगुण अवतारों ने जो अपनी ही शरण उस वक्त के जीवों को इख़्तियार कराई उसकी बाबत भी ऐसा लिखा है कि :—

चौपाई ।

अब तुम सब निज निज गृह जाऊ । सुमिरो मोहि डरहु जनि काऊ ॥

दोहा—अब गृह जाउ सखा मम, भजहु मोहि दृढ़ नेम ॥
सदा सर्वगत सर्व हित, जानि करहु अति प्रेम ॥
माया संभव भ्रम सब, अब नहिं व्यापै तोहि ॥
जानिसि ब्रह्म अनादि अज, अगुण गुणाकर मोहि ॥

इसी तरह गीता के चौथे अध्याय में भी व्यास जी ने ऐसा कहा है कि—

श्लोक

अजोऽपिसन्नव्ययात्मा, भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय, संभवाम्यात्म मायया ॥

अर्थ यह है कि जन्म से रहित अव्यय आत्मा और सब प्राणियों का ईश्वर यानी स्वामी होकर भी अपनी प्रकृति का आश्रय ले निज माया से मैं जन्म लेता हूँ तथा—

अव्यक्तं व्यक्त मापन्नं, मन्यतेमाम् बुद्धयः ।
परंभावमजानंतो, ममा व्ययमनुत्तमम् ॥

अध्याय ७ मन्त्र २४ वाँ

अवजानंतिमां मूढ़ा, मानुषी तनुमाश्रितं ।
परंभावमजानंतो, मम भूत महेश्वरम् ॥

अध्याय ९ मन्त्र ११ वाँ

अर्थ यह है कि मेरे नित्य और अनुत्तम स्वरूप को न जान कर मन्द बुद्धि और मूर्ख लोग प्रकट न होने वाले मुझको जन्म लेने वाला मानते हैं ॥ अध्याय ७ मन्त्र २४ वाँ ॥ और जो मानुषीय तन का आश्रय लेने वाले मुझको अज्ञानी मनुष्य सम्पूर्ण

प्राणियों का महान् ईश्वर या स्वामी नहीं समझते हैं बल्कि दो टांगों वाला मनुष्य ही मुझे ख्याल करते हैं यही मेरी बड़ी भारी अवज्ञा है ॥ अध्याय ६ मन्त्र ११ वाँ ॥ और अपनी चरण शरण दिलाने की बाबत भी देखिये कि उन अवतारी सगुण स्वरूप श्रीकृष्ण जी ने ही कैसा खोल कर निज गीता में कहा है—

श्लोक

मय्येव मन आधत्स्व—मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव—अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

अध्याय १२ मन्त्र ८

तेषामहं समुद्धर्ता—मृत्यु संसार सागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ—मय्या वेसित चेतसाम् ॥

अध्याय १२ मन्त्र ७

अर्थ—हे अर्जुन ! तू मेरे विषे ही अपने मन का लगा और मुझ में ही निज बुद्धि का प्रवेश कर। इससे तू देह त्यागने के पीछे मेरे में ही प्रवेश करेगा और मेरे में अनन्य रूप से जो तू अपने मन बुद्धि को प्रवेश कर देगा यानी लगावेगा तो इस संसार सागर से तेरा जल्दी ही मैं उद्धार कर दूँगा। इस बात में तू बिल्कुल संशय न कर और इसी तरह अठारहवें अध्याय के ६६ वें श्लोक में लिखा है कि

सर्व धर्मान् परित्यज्य—मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो—मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

अर्थ यह कि हे अर्जुन ! तू सारे धर्मों को छोड़कर एक मेरी शरण में आ ! मैं तुझको संपूर्ण पापों से मुक्त करूंगा, तू किसी प्रकार का शोच मत कर। इतने कहने के बीच में एक बात यह और भी पाठकों को न भूलनी चाहिये कि अवतारों ने जो अपना इष्ट निज ज़माने के प्रेमी भक्तों को क़बूल या इख़्तियार करने की शिक्षा दी है सो अपने इस भौतिक शरीर को सगुणावतार नहीं कहा और न उसको किसी जीव का इस मर्त्य लोक से उद्धारकर्त्ता क़रार दिया है। उन का लक्ष्य तो हमेशा निज भंडार के धनी के साथ जीवों से दृढ़ प्रेम प्रीति कराने का ही रहता है और वह आप भी सूर्य की किरणों की तरह अपने धनी से हमेशा एकमेक हैं यानी हरवक़्त बे रोक टोक उससे मिले रहते हैं। इससे उनका अपनी तरफ़ प्रीति प्रतीति निज प्रेमियों के दिलों में पैदा कर दृढ़ कराना भी ऐन जायज़ होकर उसी अपने मालिक की भक्ति की तरफ़ जीवों को लगाना समझना चाहिये। यह नहीं है कि उस धनी को छोड़ वह अपने शरीर की सेवा भक्ति करने का किसी भक्त को उपदेश करते हों। ऐसा हर्गिज़ भी उनका अंतरी ख़्याल नहीं है क्योंकि इस बात को उन्होंने ही अपने ज़माने के प्रेमी परमार्थियों को शिक्षा दी है कि यह पंच भौतिक शरीर चाहे किसी अवतार का हो या मामूली इन्सान का हो जड़, अनित्य और परिछिन्न ही है जैसे कि श्रुति कहती है (यद्दृश्यं तदनित्यं) यानी जो इन चर्म चक्षुओं का विषय है वह सब दृश्य नाशमान ही समझना चाहिये। और गुसाईं जी भी निज रामायण में इसी की पुष्टि इस कड़ी से यों करते हैं कि:—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानो भाई॥

अर्थ सीधा है और पद्म पुराण में श्री विष्णु जी ने भी एक जगह लक्ष्मी जी और नारद जी से यही बात खोल कर कही है।

श्लोक।

मायामयमिदं देवी, वपुर्मे नतुतात्विकं।

यानी हे देवी! ये हमारा शरीर माया के मसाले का बना हुआ है इसलिये यह हमारा असली स्वरूप नहीं है। तथाः—

श्लोक।

मायाह्येषां मयासृष्टां यन्मां पश्यति नारद।
सर्वभूत गुणैर्युक्तं नतुमां द्रष्टुमर्हसि॥

अर्थ—यह है कि हे नारद! जिस शरीर का निज चर्म चक्षुओं से तुम दर्शन कर रहे हो सो यह तो हमने माया के मसाले रूप इन पाँच भूतों से ही यहां पर बनाया है यानी इस मृत्यु-लोक में धारण किया है लेकिन सब जीवों का चराचर भूत यानी स्थावर जंगम रूप सारे प्राणियों के शरीरों के अन्दर जो हमारा सच्चिदानन्द स्वरूप निजात्मा है उसको तुम इन स्थूल नेत्रों से नहीं देख सकते हो। इस तरह पर ये खाकी जिस्म चाहे किसी का भी क्यों न हो मगर उद्धारकर्त्ता सच्चा सगुण अवतार नहीं हो सकता। हाँ यह बेशक सत्य है कि परम पवित्र और सब जीवों की उद्धारकर्त्ता उस महान् चेतन स्वरूप सगुणधार के विराजने के योग्य होने की वजह से उसका यह परमश्रेष्ठ मंदिर ज़रूर

कहा जा सकता है यानी जैसे किसी राजा महाराजा के निवास करने योग्य किसी श्रेष्ठ मकान को अन्य लोग राजमहल या राजभवन कहा करते हैं तैसे ही इस नीचे की सारी रचना की चेतनता के महान् सूर्य उस परब्रह्म परमात्मा से किरण या लहर रूप में निकल कर आई हुई वह परम चेतन और परम पवित्र जो सगुण धार है उसके निवास करने की वजह से उन सगुणावतारों के शरीर को अगर गौण रूप से सगुण अवतार कहें तो कोई मुजायक़ा नहीं है। दूसरे वह परम पवित्र सगुणधार निज चेतन रूप से इन अवतारों के सारे शरीर का और ख़ास कर उनके चहरे को बहुत कुछ चेतन व रोशन किये रहती है इसी वास्ते प्रेमी परमार्थी जीवों के मन पर (उन रोशन चेहरों का तसव्वुर यानी ध्यान करने से) बड़ा भारी रूहानी असर होता है। तीसरे यह अवतारी शरीर प्रेमी भक्तों के मन को दुनिया की तमाम चीज़ों से और स्त्री पुत्र कुटुम्ब रिश्तेदार यार दोस्त माल असबाब के मोह और आसक्ति से निज प्रेम प्रीति के द्वारा मुहब्बत में बाँधकर सहज ही में छुड़ाकर उद्धार के क़ाबिल बनाता है यानी इन्द्रियों के विषयों और संसार के सारे पदार्थों रूप पुत्र कलत्रादि में बिखरे यानी फैले हुए जीवों के मन को अपनी तरफ़ खींच कर सहज ही में समेट कर एकत्र कर देता है। इस ज़बरदस्त काम को आसानी से ही पूरा हो जाने के वास्ते और कोई ऐसा आसान तरीक़ा पृथ्वी भर में नहीं है। चौथे परमार्थिक व व्यावहारिक भेदों व बातों की शिक्षा भी इसी शरीर के मारफ़त वह सगुण अवतार निज सेवकों को

देते हैं इस वास्ते इन उपरोक्त लाभदायक कई बातों की वजह से उन सगुण अवतारों का वह स्थूल शरीर भी अन्य मामूली जीवों के जिस्म के मुक़ाबिले में सगुण अवतार ही व परम पूज्य या सेवा सत्कार के योग्य माना या कहा जा सकता है। और आगे पीछे के प्रेमी भक्तों ने इसी वास्ते उन अवतारों के शरीर की बहुत सी महिमा भी बयान की है। लेकिन यह सब कुछ जायज़ होते हुए भी जीवों को इस भवसागर से पार या उद्धार करने वाली तो वह सगुण धार है ही जो कि अपने निर्गुण ब्रह्मरूपी समुद्र से ज्वार भाटे की तरह बेरोक टोक यानी बेपरदे उन अवतारों के शरीर के अन्दर हमेशा आती और जाती रहती है। वही इस देश की बुन्द रूप सुरतों को यहाँ की मन माया और काल कर्म की निहायत दुस्तर कीचड़ से निकाल कर निज भंडार में मिला सकती है। और किसी की ताक़त नहीं है कि जीवों को इस कर्दम से निकाल सके और इसी लहर या किरण रूप धार के उन अवतारों के शरीर में से सिमट कर निज भंडार में चली या मिल जाने की वजह से वह जिस्म फिर किसी काम के नहीं रहते। इससे मुख्य महिमा तो इसी धार की है मगर इसके विराजने की वजह से वह अवतार-शरीर भी गौण महिमा वाले कहे जा सकते हैं। और इतर सारे जीवों के माननीय या पूजनीय हो सकते हैं और एक बात यहाँ पर हम पाठकों को यह भी ज़रूर इन अवतारों की निस्बत जतलाये देते हैं कि ये सबे सगुण अवतार जिस काम को लेकर यहाँ पर आते हैं उसके पूरा कर चुकने पर इस ख़ाकी तन से निज धार को समेट कर जब अपने

धनी या भण्डार से जा मिलते हैं तो फिर इस नीचे की सृष्टि से कोई निजी तअल्लुक़ नहीं रखते और न फिर यहाँ पर लौट कर किसी को (उनकी निस्बत इष्ट इख़्तियार करके गुणानुवाद गाने या उनकी नक़ल उतार कर पूजा या ध्यान भजन करने से) दर्शन दे उसकी मदद करने के लिये आते हैं। यह सब बातें तो उनकी यहाँ पर विद्यमानावस्था ही में ठीक ठीक पूरी होती हैं। पीछे हर एक को अपने अपने शुभाशुभ कर्म का फल उनके करतूत के हिसाब से उत्तम मध्यम और निकृष्ट जरूर मिला करता है मगर उस पिछले अवतार से किसी का भेंटा नहीं हो सकता। अलबत्ता यह हो सकता है कि अगर किसी प्रेमी भक्त ने उनकी नक़ल उतार कर सच्चे तौर से सिर्फ एक उन्हीं के दर्शन की आशा रख उपासना की है और अन्तर बाहर निज इष्टदेव रूप अपने प्रीतम से वह हमेशा तद्रूप हो रहा है तो ऐसे अनन्य प्रेमी भक्त को इसी मण्डल यानी पिण्ड देश का धनी उसकी आशा वासनानुसार वैसा ही रूप धारण करके जरूर दर्शन दे सकता है। मगर उन असली अवतारों के दर्शन यहाँ से लौट जाने पर हर्गिज़ भी किसी को नहीं हो सकते चाहे कोई लाखों उपाय करता रहे। अब उनके उस पिछले स्वरूप से किसी को कुछ भी लाभ नहीं हो सकता क्योंकि एक तो वह सगुण अवतार निज वर्तमान-काल में इस देश की हर एक आशा-वासना से बिल्कुल रहित हैं। दूसरे उनके अन्दर की सगुण धार निज मुक़ाम से यानी निर्गुण ब्रह्म रूपी सिंधु से हमेशा व हर वक्त बेपरदे मिली हुई होने की वजह से इन खाकी तन, मन इन्द्रियों से वह बिल्कुल

अलहदा वर्त्त रहे हैं यानी इस स्थूल देह के इन औजारों से मिल कर स्वेच्छावश इनके मुतअल्लिक हर एक कार्य करते हुए भी वह सच्चे अवतार निहायत निर्लेप और निसंग बने रहते हैं। लेकिन इस बात का पता लगाना हर एक मामूली अनाभ्यासी जीव की सामर्थ्य से बाहर है। उनकी गति को या तो वही ठीक ठीक जानते हैं या उन्हीं के समान गति वाला कोई अन्तरी अभ्यासी पुरुष हो तो वह पहिचान सकता है। अन्य किसी पढ़े लिखे विद्वान् की यह ताक़त नहीं है कि उनको असल गति, रूप व असंग अवस्था का कुछ अनुमान भी सही सही लगा सके। सो हर्गिज भी ख्याल में नहीं ला सकता है। अब इतने ही संक्षेप लेख से हमारे प्रिय पाठकगण पुराने या हाल के ज़माने के सगुण अवतारों की निस्बत असल जानकारी से कुछ कुछ वाक़िफ़कार ज़रूर हो गये होंगे कि वे असल में क्या चीज़ हैं। इस बात के समझाने के वास्ते ही बीच में यह प्रसंग हमने बयान किया है। अब फिर उसी प्रसंग में आकर उन अवतारों के सुगम अगम चरित्रों के आधार पर दो एक शंका समाधान करके इस लेख को समाप्त करेंगे। देखिये कि जब वह सच्चे सगुण अवतार यहाँ पर नरशरीर में प्रकट होते हैं तो इस मनुष्यशरीर के नियमों के अनुसार ही उन्हें यहाँ पर बर्तना पड़ता है और जब हर एक बात में वह अन्य जीवों के मुवाफ़िक़ आप अन्दर से असंग होकर वर्तते हैं तो यही उनके नरलीला के सुगम अगम चरित्र कहे जाते हैं और इन्हीं को देख देख या सुन सुन कर उनके ज़माने के श्रद्धा वाले प्रेमी भक्त जब तब भ्रम सन्देहों

में गिरफ़्तार हो जाते हैं फिर महापुरुषों की तरफ़ से धोखा खाकर पहिले तो परख पहिचान ही नहीं कर पाते और किसी वजह स उनकी शरण में आ भी गये तो सच्चे विश्वास के साथ प्रेम प्रीति के बर्ताव में हमेशा डिगमिगाते हुए रूखे फीके बने रहते हैं। और बाज़ दफ़ा काम क्रोधादि विकारों की प्रवल धारा में पड़कर ऐसे विमुख हो जाते हैं कि फिर उनको निज वक्त के कामिल अवतारों की तरफ़ से हमेशा या कुछ काल के लिये मजबूरन् अलग या विमुख होना पड़ता है। इसी अभिप्राय को निज जहन में रख कर आदि में हमने सबसे ऊपर अपने इस लेख का शीर्षक यह रक्खा था कि पिछले जमाने में भी उन सगुण अवतारी महापुरुषों की परख पहिचान हर एक प्रेमी भक्त को सहल न थी। इस बात के सबूत में और जांच। परख आने की कठिनाई में ही गीता के दसवें अध्याय के दूसरे श्लोक को और गुसाईं तुलसीदास जी के उत्तरकांड के उक्त दोहे को पेश किया था। पाछ असली तौर से नारद, गरुड़, जनक, दशरथ, गुरु वशिष्ठ और ब्रह्मा और अक्रूर व अर्जुन आदि से प्रेमी भक्तों को उदाहरण रूप से पेश करके यह बात दृढ़ कराई थी कि जब प्राचीनकाल के महान् पवित्र बड़े बड़े विद्या बुद्धि वाले सर्वज्ञ महापुरुषों और प्रेमी परमार्थियों का तो निज वक्त के राम कृष्णादि सगुण अवतारों की असलियत को समझने बूझने में उपरोक्त प्रकार से यह हाल रहा है कि वह लोग महापुरुषों की मौजूदगी ही में नरलीला के चरित्रों की उलझनों में पड़कर नाना तरह के भ्रम सन्देहों रूपी भँवरों और चक्रों में गोता खाते हुए बहुत प्रकार

से अपनी लाचारी दिखाते रहे हैं और आजन्म धोखों के धक्कों में आकर असली निज लाभदायक प्रीति प्रतीति या परख पहिचान अपने वक्त के अवतारों की नहीं कर पाई है तब इतर जो आज कल के मामूली मनुष्य हैं या पढ़े लिखे विद्वान् पुरुष हैं वह वक्त के किसी अवतारी सन्त महात्माओं की काम, क्रोध, लोभ, मोहादि की कीचड़ से सनी हुई बुद्धि से किस तरह जांच परख कर सकते हैं अर्थात् इस जड़ मति से वह कभी भी किसी के लखाव में नहीं आ सकते। इसी वास्ते गुसाईं तुलसीदास जी ने ऐसे सगुण अवतार स्वरूप महान् पुरुषों की तरफ इशारा करने के लिये ही श्री रामचन्द्र जी को लक्ष्य बना कर उत्तरकांड के एक दोहे में यह लिखा है:—

दोहा—काम क्रोध मद लोभ रत—गृहासक्त दुख रूप ॥
ते किमि जानहिं रघुपतिहि—मूढ़ परे तम कूप ॥

अर्थ सीधा है । और ऐसे ही वाचक भक्तों की बावत श्रीकृष्ण महाराज ने भी गीता के सातवें अध्याय में यह कहा है:–

श्लोक

नाहं प्रकाशः सर्वस्य, योग मायासमावृतः ॥
मूढोऽयं नाभिजानाति, लोको मामजमव्ययम् ॥

अर्थ यह है कि हे अर्जुन ! सारे मनुष्य मुझे नहीं पहिचान सकते हैं यानी यह निश्चय होना इन लोगों को दुस्तर है कि नर-शरीर में जो विराजमान कृष्ण महाराज हैं वे परब्रह्म के सगुण अवतार हैं क्योंकि मैं निज माया करके आच्छादित हूँ यानी

मनुष्य शरीर में आकर इसके नियमों मुताबिक़ वर्तने की वजह से ये लोग बहुत कम मेरा विश्वास कर सकते हैं। इसी वास्ते अज्ञानजन्य विकारों से भरे हुए मनुष्य मुझ अजन्मा व अविनाशी को ठीक ठीक तरह नहीं पहिचान सकते हैं। इत्यादि रूप से आजकल के इन सगुण उपासकों और सनातन धर्म के कट्टर साधु और गृहस्थ विद्वान् पंडितों को शास्त्रों का कथन सुन और निज वर्ताव देखकर अपने अंदर में सोच लेना चाहिये कि गुसाईं जी के उपरोक्त दोहे के अर्थानुसार हम लोगों का अंतःकरण काम क्रोधादि उक्त विकारों से आया बिल्कुल साफ़ है या नहीं और हम गृहासक्त हैं कि नहीं यानी अपने तन मन और पुत्र कलत्र, कुटुम्ब, रिश्तेदार और माल असबाव में हमारी मजबूत पकड़ है या नहीं और क्या उपरोक्त इन सब वस्तुओं के हर्ज मर्ज या रद्दो बदल व संयोग वियोग होने से हमारा अंतः करण विक्षिप्त नहीं होता है और इस बात की कसौटी पर क्या कभी हमने अपने आप को कस कर मालूम किया है ? और श्री कृष्ण जी के कहे मुताबिक़ आया हम लोग अविद्या रूप अगाढ़ अंधकार से आच्छादित हैं कि नहीं और उन पुराने सगुण अवतारों की (नामौजूदगी में ही) हमने कहाँ तक परख पहिचान करली है। और पुराने ज़माने के बड़े बड़े ऋषि मुनि प्रेमी भक्त भी इस जांच परख की गर्दो गुबार में व्याकुल हो अवतारों की असलियत के समझने व बयान करने में जब अपनी निहायत लाचारी दिखाते हुए कानों पर हाथ धर जाते थे तो वह सगुण अवतार हमने किस उपाय से ठीक ठीक यथार्थ पहिचान लिये हैं और हमारी यह परख

पहिचान आया कोरा वाक् विलास या बुद्धि विलास ही तो नहीं है। और अगर ठीक ठीक पक्की भी है तो आया यह हमारी अंतरी जांच परख या प्रीति प्रतीति (कभी तन, मन, इन्द्रियों मुतल्लिक़ सुख दुःख या स्थूल भोग विलासों के पदार्थों के हानि लाभ या संयोग वियोग के झपट्टों में आकर) मुर्झा तो नहीं जाती यानी हम लोग जैसे के तैसे ही बने रहते हैं या कुछ कुम्हिला जाते या बिल्कुल ही सूख तो नहीं जाते हैं और मूर्त्ति सम्बन्धी इस सगुणोपासना का फल (उन गये गुज़रे हुए राम कृष्णादि सब्बे अवतारों का) जीवन काल में ही हमें कभी साक्षात् दर्शन हुआ है कि नहीं ? और अगर यह फल जो नहीं हुआ तो इन नक़ली और जड़ धातु पत्थर की बनी हुई (राम कृष्णादि नामधारी) प्रतिमाओं के प्रताप से या इनके बहाने से व्यापक राम कृष्णादि रूप अंतर्यामी भगवान् के गुणानुवाद गाने और सेवा पूजा भजन ध्यान करने से हमारी आंतरिक संसारी जन्मान् जन्म की आशा वासनाओं का कहाँ तक खात्मा या नाश हुआ है। और इसका दूसरा फल पिछले कर्मों का दफ़्तर बिल्कुल या कुछ कुछ ही हमारा साफ़ होकर निजात्मोन्नतिकारक रास्ते में हम लोग कहाँ तक पहुँच गये हैं। इस प्रकार से सच्ची तहक़ीक़ात पूर्वक निज अंदर के हाल की ठीक ठीक छान बीन करने की इन टेकी और पक्षपातियों को क्या ज़रूरत है ? क्योंकि जो सत्य सत्य उपरोक्त प्रकार से असली विचार (दुराग्रह को त्याग कर निज हृदय के अंदर) करेंगे तो अपने को उन उपरोक्त परमार्थी फल रूप न्यामतों से बिल्कुल ही खाली पावेंगे और सिर्फ़ वचन वार्ता के

व्यापारी होने से आपको अंदर बाहर में निहायत रीता जानकर वक्त के किसी सच्चे सगुण अवतारी संत महात्मा की कहीं तलाश करनी पड़ेगी और फिर उनके आगे दीन अधीन होना पड़ेगा अलावा इसके जिस प्रकार वह शिक्षा फ़रमावेंगे उसी के मुताबिक़ अमल करने में निज तन, मन, इन्द्रियों पर जोर डालकर इनको क़ाबू में रखना होगा। तथा उन सच्चे राम कृष्णादि के असल मूल भंडार की अगर खोज तलाश करें तो न जाने उसके समझने बूझने और उसकी प्राप्ति के उपायों में कितना कष्ट उठाना पड़े और निज स्वतंत्रता के भोगों में खलल पड़ कर न जाने क्या क्या दिक्कतें भोगनी पड़ें। इस वास्ते यह कैसा सुगम और निहायत आसान तरीक़ा है कि किसी नक़ली मूर्त्ति को सामने रखकर उन प्राचीन राम कृष्णादि सगुण ब्रह्मों के उपासक या भक्त बन जावँ क्योंकि ये जड़ प्रतिमा तो कुछ कहती, सुनती, देखती, भालती, खाती, पीती, और लेती देती ही नहीं है और न यह हम लोगों के मन चाहे किसी व्यवहार वर्ताव में विघ्न डाल कर प्रतिबंध कर सकती हैं। और इनके सेवन पूजन से वह सच्चे राम कृष्णादि तो हमें मर कर मिल ही जायँगे क्योंकि भावनामय सिद्धि होने से सब प्रकार से इस वर्तमान काल में हम लोग उन्हीं का भजन ध्यान करते हुए गुणानुवाद गा ही रहे हैं और क्या यह हमारी आंतरिक भावना झूठी हो निष्फल ही चली जायगी? क्या भगवान् हमारे अंतर के भाव को नहीं देखते हैं? वह तो घट घट की बात जानने वाले व्यापक अंतर्यामी हैं सो जरूर हमारा उद्धार करेंगे। सो हे भाइयो! तुम जो कहते हो वह सब सत्य है मगर तुम अपने

अंतरी भाव की तो परीक्षा कर देखो कि आया यह सच्चे भगवान् विषयक है यानी तुम्हारी अंदरी भाव रूप वृत्ति (राम कृष्ण नामधारी मुनुष्याकार धातु की जड़ मूर्त्ति सामने होते हुए) क्या उस निर्गुण, निराकार, अज, अव्यक्त सर्व समर्थ को विषय करती है या उसी आकारिक जड़ प्रतिमा के आकार होती हुई मुख से किसी मंत्र का जप और मन से उसी मूर्त्ति स्वरूप जैसे भगवान् का ध्यान तो नहीं कर रही है। अगर तुम कहो कि इसमें क्या झूठ है बस यही तो हमारी सच्ची सगुण भक्ति या उपासना है। तो हम कहेंगे कि ज़रा आँखें खोल कर कुछ सोच विचार देखो कि वाणी से जो तुम किसी मंत्र का जाप या स्तोत्र का पाठ करते हो सो यह तो तुम्हारा वाणी का शुभ कर्म है और सब तरफ़ से अपने मन को समेट कर उस जड़ मूर्त्ति के सहारे चित्त से जो ध्यान जमाते हो और उसमें विश्वास रखते हो यह तुम्हारा मन बुद्धि का शुभ कृत्य है। इस शुभ कर्म का फल तुम्हें जरूर मिलेगा मगर जब तुम्हारे अन्दर की भाव रूप वृत्ति यदि अन्तर ही में प्रकट होगी तो या तो अन्दर के ही सुख दुख और काम क्रोधादि विषयों को विषय करेगी और या नेत्र, इन्द्रिय द्वारा बाहर निकल कर सामने जड़ चेतन जैसा पदार्थ होगा उसके आकार होगी। यह एक अटल क़ायदा क़ुदरत ने शब्दादि पंच विषयक रूप सारे संसार के पदार्थों के यथार्थ इन्द्रियजन्य ज्ञान होने में बना रक्खा है। सो ताज्जुब है कि अन्दर से निकली हुई तुम्हारी वृत्ति के सामने तो धातु पत्थर की बनी हुई जड़ नक़ली

प्रतिमा होने से वह उसी के आकार है। और आप उसे मानते हैं कि यह तो भगवानविषयक है सो भला इसे कोई कैसे निज आँखें मूँद कर आपकी न्याई मंजूर कर सकता है। विचार करने का मुक़ाम है कि प्रथम तो ये मन इन्द्रियाँ और मनइन्द्रियजन्य वृत्तियाँ आप मायिक मसाले से बनी हुई बहिर्मुख ही हैं और अन्तर बाहर जो जो पदार्थ इनका विषय हैं वह भी सब आत्मिक दृष्टि के लिहाज़ से नितान्त ही बहिर्मुख हैं। यह ढिंढोरा ख़ास वेद भगवान् ही ने पहले से पीट रक्खा है। निज आत्मा और उसका भंडार सच्चा मालिक मन, वाणी से बिल्कुल परे है। न आगे कभी इन्होंने उसको विषय किया और न अब कर सकते हैं। यह बात भी बीसों जगह श्रुतियों में लिखी है। मगर फिर भी ये मूर्त्तिपूजक बड़े विद्वान् भी यही कहते व समझते हैं कि हम सगुणोपासक इन जड़ प्रतिमाओं के अन्दर या इन्हीं के वसीले से एक भगवान् का ही ध्यान भजन कर रहे हैं सो यह बड़ा आश्चर्य और ताज्जुब है। इस पर कोई विद्वान् पंडित यह जवाब देते हैं कि हमारी आँखों के और वृत्ति के सामने चाहे धातु पत्थर की बनी हुई जड़ प्रतिमा भले ही हों मगर सच्चे आंतरिक भाव से तो हम उसी सर्व समर्थ परब्रह्म परमात्मा के ही गुणानुवाद गाकर और ध्यान भजन करके प्रीति प्रतीति पूर्वक आराधि रहे हैं। वस्तु अन्य है और हमारी मान्यता भी भिन्न है सो इससे क्या अगर हम पत्थरपुजारी होते तो पत्थर के गुणानुवाद गाते। क्या किसी का पिता अन्य वस्तु स्वरूप हाड़ मांस चाम का पुतला बना हुआ अन्य रूप से यानी

निज पिता रूप से नहीं भावना किया या पूजा व माना या कहा जा सकता है। तो हम इस एतराज़ के जवाब में पहिले आपसे यह पूछते हैं कि उस चेतन पिता के अन्दर इन हाड़ मांस चामादि के अलावा निज पुत्रों से अपने पितापन का दावा करके अतिशय प्रेम मुहब्बत करने वाली कोई अन्य वस्तु है कि नहीं? अगर आप कहें कि हाँ (आत्मावै जायते पुत्र) इस श्रुति प्रमाण से निज पुत्रों से अपनी तरफ़ से भी अत्यन्त प्रेम प्रीति कर दिखाने वाला उसका जीवात्मा (हाड़ मांस मय उसके तन के अन्दर) अन्य भी है और उन पुत्रों की मुहब्बत भी सची अपने पिता से इस जीवात्मा के लिहाज़ से ही समझनी चाहिये। क्योंकि इसके अलग होते ही उन हाड़ मांस चाम को कोई एक दिन भर भी अपने घर या पास नहीं रखना चाहता। तो अब इसी उसूल पर विचारिये कि उन नक़ली जड़ प्रतिमाओं के अन्दर बाहर सिवाय धातु पत्थर के क्या कोई अन्य वस्तु और है। अगर यह कहो कि नहीं तो उनमें आप निज कल्पना रूप अन्तरी भाव से उन पुराने ज़माने के गये गुज़रे राम कृष्ण को या उनके निर्गुण निराकार परम चेतन रूप संपूर्ण आत्माओं के भंडार परब्रह्म भगवान् को क्या अपनी तरफ़ से आप प्रवेश कर सकते हैं? क्या पुत्रों ने किसी निज पिता के हाड़ मांस चाम के भीतर निज अंतरी काल्पनिक भाव (भावना) के ज़ोर से पितापन या उनसे मुहब्बत करने का मादा घुसेड़ रक्खा है? नहीं नहीं ये सब बातें क़िसी एक तरफ़ से घुसेड़े से नहीं ज़ाहिर हो रही हैं। यह प्रेम प्रीति का वर्ताव और निर्वाह तो दोनों ओर से

होता है। इकंगीपन की प्रीति प्रतीति कभी सच्ची नहीं समझनी चाहिये। इस दृष्टान्त से आप समझलें कि किसी चेतन व्यक्ति का उदाहरण किस प्रकार इन जड़ मूर्त्तियों के सेवन-पूजन की बाबत् जायज़ हो सकता है। और जो कुछ इकंगीपन की कार्रवाई आप निज भावना से कर रहे हैं सो कुछ बुरा काम तो नहीं है मगर यथार्थ नहीं है। हाँ अगर मूर्त्ति की तरफ़ से भी चेतनता का कुछ व्यवहार होता तो बेशक आप की सेवा भक्ति करना सच था लेकिन सो कुछ है नहीं। और अगर आप उस व्यापक चेतन का बहाना इन जड़ मूर्त्तियों के अन्दर मान निज अंतःकरण में संतोष करे बैठे हों तो यह भी तुम्हारा ख्याल क़तई ग़लत है। क्योंकि उस व्यापक चेतन में सत्ता, चेतनता, आनन्द और प्रकाश ये गुण हैं। सो ये सांसारिक सभी चीजों को बराबर नहीं मिले हैं। किसी में एक किसी में दो किसी में तीन और किसी में चारों ही हैं। मगर आप की मान्य इन जड़ मूर्त्तियों को तो सिर्फ़ एक सत्ता ही उस व्यापक भगवान् से मिली है। उसका भी आप अस्ति शब्द के उच्चारण से केवल अनुमान ही कर सकते हैं किसी निज अन्दरी भाव या वृत्ति से साक्षात् दर्शन हर्गिज भी नहीं हो सकता है। और न उससे आप को कोई निजी मतलब ही हासिल होगा। उस एक सत्ता वाली प्रतिमा से निहायत बढ़कर चेतन तो ख़ुद तुम्हारे अन्दर तुम्हारा निजात्मा ही उपरोक्त चारों गुणों युक्त मौजूद है। इस वास्ते दूसरी जगहों के व्यापक भगवान् की सेवा पूजा या खोज तलाश के

बजाय निज अन्दर ही में आप गोता क्यों नहीं मारते ? अफ़सोस है कि आप खुद शाहंशाह के शाहंशाह होकर भी एक मृन्मय ढेले के पीछे पड़े हुए हो और मानो निज घर की मेवा को छोड़ कर बाहर बेहड़ों में महा तुच्छ रूप करीलों से टेंटी बीनते फिरते हो। अगर आप यह शंका करें कि तो क्या पुराने जमाने के सर्वज्ञ ऋषि मुनियों ने यह जड़-प्रतिमा-आराधना निज शास्त्र पुराणों में वृथा ही लिखी और मानी हुई है ? इसका भी जवाब सुनिये कि ऋषि मुनियों के इस बारे में अभिप्राय या मन्तव्य को आप या कोई वर्त्तमानी मूर्त्ति-उपासक मानता ही कब है। देखिये कि उन प्राचीन बुजर्गों का इस आत्मोन्नति रूप परमार्थ के मामले में तात्पर्य किसी जड़ वस्तु को मालिक के स्थान पर पुजवाने या आराधन कराने का नहीं था। उनका मन्तव्य तो मुमुक्षु जीवों के अन्दर से मलिनता और चंचलता रूप दोनों प्रबल विकारों के दूर या नाश करने का था। इसके लिये उन्होंने यम नियमादिक कई साधन या उपाय अपने अपने बृहद् ग्रन्थों में कहे हैं। और विक्षेप रूप चित्त की चंचलता के दूर करने के अनेक उपाय होते हुए उन्होंने सब से अव्वल ओंकार यानी प्रणवोपासना या अन्दर में अपने ही मन वाणी की उपासना ब्रह्म रूप से उपनिषदों में कही हुई हैं। और बाहर में भी चित्त ठहराने के अनेक साधन लिखे हैं। उन्हीं उपायों के मध्य में इन नक़ली मूर्त्तियों को भी एक मोटा ज़रिया चारों तरफ़ बिखरे हुए चित्त को समेटने के लिए इस प्रकार विष्णु पुराण में व्यास जी ने लिखा है कि:—

श्लोक

ततः शंख गदा चक्र, शार्ङ्गादि रहितं बुधः ।
चिंतयेद् भगवद् रूपं, प्रशांतं साक्ष सूत्रकं ॥ १ ॥
यदा च धारणा तस्मिन्नवस्था नवती ततः ।
किरीट कैयूर मुखैर्भूषणै रहितं स्मरेत् ॥ २ ॥
तदैकावयवं देवं, सोहं चेति पुनर्बुधः ।
कुर्यात्ततो ह्यहमिति, प्रणिधान परोभवत् ॥ ३ ॥

अर्थ—देखिये कि ऋषि मुनियों का किसी मूर्त्ति को ही भगवद् रूप से आराधना कराने का निजी मन्तव्य होता तो अपने शास्त्रों में ऐसा क्यों कहते कि हरि भगवान् की किसी मूर्त्ति का प्रथम तो शंख चक्रादि आयुधों और भूषणों सहित ही ध्यान करे फिर इन उपरोक्त सारे चिन्हों को परित्याग कर सिर्फ एक उनके शरीर का ही ध्यान करना चाहिये। पीछे उसको भी त्याग एक मुख और चेहरे पर ही निज चित्त को जमाना चाहिये फिर उस मुख से भी हट कर अपने अन्दर सोहं भाव से ध्यान करना चाहिये। आगे फिर उसे भी त्याग कर सिर्फ एक अहं अहं भाव की सबसे अन्दरी और निहायत सूक्ष्म भावना रूप उपासना पर निज चित्त को दृढ़ टिकाना चाहिये यानी हर एक भक्त को उन सब स्थूल उपासनाओं को छोड़ कर सब से सूक्ष्म रूप इसी आराधना से निज चित्तको एकाग्र या स्थिर करना चाहिये।

ऋषि मुनियों के इस उपरोक्त अभिप्राय को आप विचार लीजिये कि किसी जड़ धातु पत्थर की मूर्त्ति को ही सच्चे मालिक का रूप मान कर पुजवाने का उनका हर्गिज़ भी इरादा नहीं था और न इन मूर्त्तियों के अन्दर व्यापक चेतन से ही उन्हें कुछ रिश्ता या मुहब्बत थी। वह तो इस जड़ाकार को निकृष्ट अधिकारियों के वास्ते चित्त ठहराने का एक सबसे नीचा ज़रिया या द्वारा ही कहते व मानते रहे हैं। मगर इस वक्त के टेकियों ने उनका बहाना कर निज अज्ञानता की वजह से इन मूर्त्तियों को (ऋषि मुनियों वाले उपरोक्त अभिप्राय रूप फल को त्याग कर) अपने रोज़गार में एक आमदनी का ज़रिया ही बना लिया है। इसी वास्ते अगर कोई सच्चे महात्मा पुरुष इन मूर्त्तियों की निस्बत उपरोक्त प्रकार से ऋषि मुनियों के तात्पर्य को लेकर कुछ कहते सुनते हैं तो ये रोज़गारी लोग अपनी आमदनी में ख़लल पड़ने की शंका से बड़े नाराज़ होकर उनको अनेक तरह के बहानी इलज़ामों से बदनाम करते हैं और ऋषि मुनियों और वेद-शास्त्रों व सनातन धर्म का निन्दक व खण्डन करने वाला कहते हैं और निज अन्दर में ग़ोता मार कर यह नहीं सोचते विचारते कि हम लोग ही असल में इन (मूर्त्तियों) के पुजारी नहीं हैं। बल्कि तन मन इन्द्रिय पोषणार्थ विषय भोगों की प्राप्ति का ही इनसे काम ले रहे हैं। तात्पर्य यह है कि पहिले तो आपको, पूरा पूरा जानकार होकर और हर एक तरह के निज स्वार्थ पर लात मार कर निष्पक्षता से अगले पिछले महापुरुषों के असल अभिप्राय को समझाने बुझाने वाला सांचा पुरुष भी, कहीं कोई ढूँढे से ही

मिलेगा। जो कुछ इस वक्त हैं वह थोड़ी बहुत जाहिरी विद्या बुद्धि वाले किसी न किसी टेक पक्ष के धारणकर्त्ता हैं क्योंकि उन्हें भी कोई उक्त प्रकार का निष्पक्ष यथार्थी गुरू नहीं मिला है। जो कोई मिला है वह ऐसा मिला है जो उन्हीं की ज्ञात व धारण की हुई पुरानी रस्म को ही निज प्रमाणों से उनके अन्दर दृढ़ करा देता है। इस तरह पर गतानुगति के तौर पर परम्परा से लेके आज तक वही पीछे बयान किया हुआ अन्धकार रूप भ्रम फैलता चला जाता है। वजह इसकी मेरी समझ से यही मालूम देती है कि सनातन धर्म के बड़े बड़े विद्वान् पण्डित और साधु व सगुणोपासना के पक्षपाती भक्त लोग निज इष्टदेव रूप राम कृष्णादि अवतारों की पीछे पहिले वर्णन की हुई उस सगुण धार से बिल्कुल नावाक़िफ़ हैं। उन्होंने उन सच्चे अवतारों की पंच भौतिक स्थूल देह को ही सचा सगुण ब्रह्म समझ रक्खा है। इसी वास्ते उसकी नक़लें उतार उतार कर ये लोग आजकल इन जड़ प्रतिमाओं के हठी और पक्षपाती बन रहे हैं। क्योंकि अगर जो किसी सच्चे योगाभ्यासी महात्मा की कृपादृष्टि से इन अन्ध-विश्वासी लोगों की समझ में वह उपरोक्त सची सगुण धार उन राम कृष्णादि के शरीर के अन्दर कार्रवाई करती हुई नजर आती तो क्यों ये लोग इस क़दर इन मूर्त्तियों में हठ करते। असल निचोड़ अर्थ यह है कि किसी अधिकारी प्रेमी सगुण उपासक को जब तक निज बुद्धि से उस निर्गुण ब्रह्म रूपी सूर्य या सिंध से किरण या लहर के तौर पर निकली हुई उस सची सगुण धार का पहिले इल्मी निश्चय नहीं हो जाता और फिर सच्चे अभ्यास की मदद से

अपने अन्तरी नेत्रों द्वारा असली लखाव में वह नहीं आती तब तक उस सगुणोपासक को निर्गुण के बजाय अपने को उन सगुण अवतारों का पक्षपाती या प्रेमी भक्त कहना या समझना किसी तरह भी जायज़ या शोभित नहीं हो सकता। और सगुण व निर्गुण इन दोनों के बजाय राम कृष्णादि की उन भौतिक देहों को ही सगुण ब्रह्म या सच्चा अवतार किसी भक्त का मानना या समझना तो ऐसा ही है जैसे कि कोई शख्स निज मूर्खता से किसी वृक्ष के बीज और उससे पैदा हुए वृक्ष का निरादर कर उसकी छाया का आदर सम्मान व सेवा पूजा करता फिरे।

इस समझ से तो जैसे असल चीज़ रूप बीज और वृक्ष का तिरस्कार कर छाया का मानना किसी का भी मानना नहीं है, वैसे ही असल रूप उन सगुण निर्गुण को छोड़ कर उन अवतारों की देह को ही परात्पर सगुण ब्रह्म किसी भक्त का मानना और समझना किसी का ही अङ्गीकार करना नहीं है। क्योंकि देह तो चाहे किसी की क्यों न हो इस देश के मायिक मसाले से बनी हुई बिल्कुल नाशवान है। यह बात हम पीछे कह ही आये हैं। हाँ यह ज़रूर है और पीछे हमने लिखा भी है कि जैसे अलख, अगुण, अगम, अरूप उस निर्गुण निराकार ब्रह्म का भेद या ज्ञान और उसकी प्राप्ति या दर्शन उसी से निकली हुई उस सगुण धार या लहर के वसीले से ही हो सकता है। इस वास्ते इस घाट पर निज भण्डार रूप ब्रह्म से मिलाने वाले

गुण की वजह से उस निर्गुण के मुक़ाबिले में यहाँ पर ज़्यादा से ज़्यादा महिमा उसी किरण या लहर रूप सगुण धार ही की समझनी चाहिये। तैसे ही उस महान् सूक्ष्म और अरूप सगुण धार की मौजूदगी या उसकी सारी कार्रवाई का ज़ाहिर होना अवतारों के शरीर की मारफ़त ही होता है यानी उनका शरीर उस सगुण धार के यहाँ पर आने और कुछ काल तक क़याम कर इस सृष्टि के जीवों को निज धाम का भेद दे वहां के चलने व ठहरने लायक़ बनाने आदि सारी ग़र्ज़ों को पूरा करने में निहायत मददगार है। इस वास्ते पीछे बयान की हुई कई मसलहतों की वजह से उन सगुण अवतारों के भौतिक शरीर की भी जितनी महिमा या बड़ाई यहाँ पर की जाय वह सब निहायत ही योग्य है और उसकी जितनी सेवा, पूजा, भाव, भक्ति, और सम्मान, प्रतिष्ठा की जाय वह सब किसी के लिये ऐन जायज़ व दुरुस्त ही है।

अब इतने विस्तृत लेख से श्रोतागण विचार लें कि इसमें किसका खण्डन और किसका मण्डन किया है। अगर सारे पक्षपातों को दिल से दूर कर ग़ौर की दृष्टि से इसे पढ़ेंगे सुनेंगे तो इस लेख में जैसी महिमा या लियाक़तदार जो वस्तु है उसका वैसा ही बयान (असलियत को हमेशा मद्देनज़र रख कर) किया हुआ पायेंगे। इसमें किसी का खण्डन मण्डन नहीं है जो असल बात लोगों के परमार्थ को (सारी भूल भ्रमों से रहित) आसानी से जल्दी बनाने वाली है उसका बयान सच्चे साध सन्तों के

बताये हुए भेद या तरीक़े पर किया है। अब इसे चाहे कोई माने या न माने यह अपनी अपनी मर्ज़ी है। पिछले सभी अवतारों और ब्रह्मदर्शी ऋषि और मुनियों और इस ज़माने के सच्चे साध सन्त महात्मा पुरुषों का जीवों को यहाँ से छुटकारा पाने यानी मुक्त होकर आवागमन के चक्र से निकल जाने के बारे में यही मंतव्य या अभिप्राय रहा है कि इस देश की मलिन रचना में और इस शरीर के अंदर अनेकों घृणित अंगों व हिस्सों में फँसे हुए इस जीव को अनन्त युग बीत गये हैं और काल कर्म व मन माया के निहायत प्रबल भँवरों व चक्रों में पड़ कर ग़ोते खाते हुए पिछले अनेकों जन्म और हाल के जन्म में सालहा साल गुज़र गये हैं और चौरासी लक्ष योनियों की हर एक देह में स्थित होकर उसके मुतअल्लिक़ इन्द्रियों के विषय भोगों में भी निहायत आसक्ति व मोह के साथ वर्तते हुए असंख्य युग व्यतीत हो गये और हाल के जिस मनुष्यशरीर में इस जीव का जन्म हुआ है उसमें भी इसके मुतअल्लिक़ हर एक जड़ चेतन पदार्थ के साथ ऐसा बन्धन गाढ़े तौर पर ज़िन्दगी भर रहा आया है कि ज़रा भी किसी पदार्थ में हर्ज मर्ज इसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ होता है तो उस वक़्त इसकी जान सी निकलती है और निज अल्पज्ञता के कारण अपनी इच्छाविरुद्ध किसी घटना के होने से ऐसा दीन अधीन होता है कि हमेशा के दुखदाई व फँसाने वाले और न साथ आये और न साथ जाने वाले क्षणपरिणामी और नाशवान् पदार्थों के योग क्षेम में ही अपना सारा जन्म बरबाद कर देता है और जिन काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, धर्म,

अधर्म, सुख, दुःखादि प्रबल विकारों के ज़रिये यहाँ पर इस लोक व शरीर में इसकी ज़िन्दगी गुज़रान हो रही है वही इस जीव को हमेशा से बड़े दृढ़ बन्धन में डाले रहे हैं व आयन्दा डाले रहेंगे। कहाँ तक लिखें शारीरिक व मानसिक सभी व्यापारों में ये सभी जीव ऐसे नीच, निबल, नादान, नालायक़ और अल्पज्ञ व असमर्थ हैं कि कुछ हद्दोहिसाब नहीं है। निज स्वार्थ परमार्थ में अपनी स्वतन्त्रता के साथ हर एक कार्रवाई करने और उसका दिल चाहा माक़ूल नतीजा या फल प्राप्त करने में इनके हाथ कुछ भी कोई निजी बल या ज़रिया नहीं है। यह बात सभी अवतारों या ऋषि मुनियों और सच्चे साध सन्त महात्माओं को इन जीवों की निस्बत पहिले से बहुत अच्छी तरह मालूम थी। और इस वक़्त भी भले प्रकार पूरे तौर पर उन्हें ज्ञात है। चाहे हम लोग अपनी तरफ़ से भले ही ग़ाफ़िल रहें या समझें और फिर भूले रहें। मगर वह उपरोक्त महापुरुष और इस नीचे की रचना का सच्चा मालिक व धनी तो हमेशा व हर वक़्त इन जीवों की उन सारी ऊपर बयान की हुई हालतों से भी बहुत ज्यादा जानते हैं और बुज़ुर्गों ने इन से हाल में छूटने के वास्ते और हमेशा को बरी या रिहाई हो जाने के लिये प्रत्यक्ष फलदायक वैदिक शास्त्रों से लेकर अदृश्य फल देने वाले वेदशास्त्र पुराणों के अन्दर औषधि व मन्त्रों के सहित जप, तप, योग, भक्ति, ज्ञानादि अनेकों उपाय या साधन भी कहे व लिखे हुए हैं और अपनी शक्ति के अनुसार सब कोई नहीं तो कोई कोई प्रेमी पुरुषार्थी मनुष्य पिछले ज़माने से लेकर आज तक उपरोक्त

प्रकार की निज कमज़ोरियों और दुखों को हमेशा के वास्ते दूर करने के लिये उक्त साधनों में भरसक कोशिश भी करते रहे हैं। मगर सिवाय विरले जीवों के क्या सभी इन्सान अपने हमेशा के उस राजरोग से बिल्कुल रिहाई या छुटकारा पा गये हैं ? अगर जवाब नहीं में है तो इसकी वजह क्या है ? अगर मुझसे कोई दर्याफ़्त करे तो मेरी तुच्छ बुद्धि से तो यही मालूम होता है कि इस देश में जन्मा हुआ और यहाँ के मायिक मसाले से अपने तन मन इन्द्रियों को भरण-पोषण करता हुआ कोई भी जीव अपने आप बग़ैर किसी ऊँची क़ाबिलियत वाले महापुरुष की मदद व सहायता के उपरोक्त सदास्थायी व्याधियों से न पहिले कभी छूटा और न आयन्दा कभी छूट सकता है। चाहे वह पीछे बयान किये हुए उन जप तपादि सारे शुभ साधनों का बर्ताव कल्पों तक क्यों न करता रहे मगर असली फ़ायदा यानी हमेशा के लिये सारे दुखों से छुटकारा पा जाना उसे निज वक़्त के किसी अवतारी महान् आत्मा के ज़रिये से ही हासिल होगा। क्योंकि व्यापक ईश्वर और जीवों के निज प्रयत्न द्वारा ही अगर सब किसी को मनमाना फल व फ़ायदा हासिल हो जाता तो क्यों पिछले समय से लेकर आज तक हरएक देश में समयानुसार अवतारी महापुरुष और योगीश्वर, महात्मा, ऋषि, मुनि पैदा होते और क्यों इन्हें मालिक पैदा करता या भेजता ? ये लोग कुछ अपनी मर्ज़ी से इस महा मलिन दुःखों से भरे हुए मर्त्यलोक में नहीं आये और न मालिक ने ही ये महापुरुष बिना किसी भारी प्रयोजन के उनके मर्ज़ी के ख़िलाफ़ उन्हें यहाँ भेजा और पैदा

किया क्योंकि वह सच्चा मालिक परम समर्थ और आगे पीछे व हाल के सारे गुप्त प्रकट भेदों को हस्तामलकवत् जानने वाला महान् सर्वज्ञ वेद शास्त्रों में ऋषि मुनियों ने बयान किया है। उन पैदा व भेजे हुए कलाधारी, संस्कारी व अवतारी महान् पुरुषों ने भी यहाँ आकर अन्य मामूली जीवों की तरह गुड़चिउंटावत् जीवन व्यतीत नहीं किया है। बल्कि यहाँ की सारी चीजों से लाचारी के तौर पर उन्होंने सिर्फ़ कार्य-मात्र ही काम लिया या वर्ताव किया है यानी जैसे कि ये साधारण जीव यहाँ के इन महान् तुच्छ व नीच (तन-मन इन्द्रिय लालनार्थ) चीजों को पाकर निहायत मग्न व मस्त हो जाते हैं और अपनी प्रबल आसक्ति व पकड़ इनमें पैदा कर लेते हैं वैसे उन महा पुरुषों ने कभी नहीं किया। वह तो मालिक के भेजे हुए एक परदेशी कारगुजार की तरह निज जिन्दगी (उसका हुक्म पालने के लिये) गुजारते रहे और इस देश की असली हालत व यहाँ के मसाले की असलियत जैसी कुछ है उसको अधिकारी जीवों को समझाते-बुझाते रहे। तथा इस अधोदेश के मुक़ाबिले में अपने ऊँचे देश के मुक़ामों के महान् श्रेष्ठ मसाले या वहाँ के ख़ास मालिक के जो असली औसाफ़ हैं और उससे मिलने का जो महान् फल है उसका भेद जीवों को बयान करते रहे। जो कोई अधिकारी व योग्य पुरुष उनसे और उनके देश सहित धनी से निज अन्दर में प्रेम-प्रीति पैदा करके वहाँ चलने के लिये अति इच्छुक व राजी हुआ उसको पूरा पूरा भेद मय रास्ते के देकर ऐसे साधन व उपाय में लगाते रहे कि वह शख़्स जल्दी ही उन की कमाई

करता हुआ उन महापुरुषों की दया मेहर से उनके असली सच्चे धाम में निर्विघ्नता से पहुँच सके और शारीरिक व मानसिक सारे दुःखों व क्लेशों सहित उपरोक्त कमजोरियों से हमेशा के लिये छुटकारा पाकर अजर अमर धाम के अविनाशी सुखों का आनन्द ले। ऐसी महान् फलदायक शिक्षा उन महापुरुषों ने अपने जमाने के प्रेमी परमार्थी सच्चे भक्तों को दी थी। ब्रह्माण्ड देश से ऊपर के विशेष चेतन रूप मालिक का भास या किरणें, यहाँ पर व्यापक, सामान्य चेतन स्थूल माया के पर्दों से ढका हुआ किसी के मन बुद्धि व अनुमान में नहीं आ सकता और न उसकी सहायता से किसी की सद्गति व दुर्गति ही हो सकती है और न ऊपर के धाम का विशेष चेतन रूप धनी ही बीच में मोटे और सूक्ष्म मायिक पर्दों के होने की वजह से किसी के लखाव में यकायक आ सकता है और न उससे किसी को निज जीव के कल्याण में कुछ मदद ही मिल सकती है। इस वास्ते उन महापुरुषों ने अपने को उस विशेष चेतन रूप सच्चे मालिक का ख़ास सगुण अवतार किरण या लहर रूप पुत्र समझ कर और अधिकारी जीवों को जाहिर कर अपनी ही चरण-शरण इख्तियार करने का अनुरोध किया, और हर तरह से अपनी ही सेवा भक्ति में लगा कर जीवों का अन्य सारे देवी देवता या भूत प्रेतादि की जगह जगह भ्रमाने वाली भ्रामिक उपासनाओं से बिल्कुल अलहदा कर दिया था। यह सिलसिला उनके ज़माने में तो बहुत अच्छी तरह कामयाबी व आसानी के साथ चलता रहा और उनकी ज़िन्दगी में अगर कोई पूरा जानशीन (स्थानापन्न)

क़ाबिल शिष्य पैदा हो गया तो उसकी मारफ़त भी वही फ़ैज़ फ़ायदा (अवतारी महापुरुषों के समान ही) जीवों को हासिल होता रहा। मगर जब उस वक़्त के प्रेमी परमार्थी विद्वान् पुरुषों ने देखा कि आगे न अब कोई अवतारों के समान कलाधारी सगुण अवतार यहाँ पर प्रकट करने की मालिक की मौज है और न जानशीन की जगह पर ही अब कोई पूरा संस्कारी महात्मा व योगीश्वर पैदा हो सकता है तो उन्हीं पिछले अवतारी महान् पुरुषों के स्थूल स्वरूपों और फिर क्रम से उनको छोड़कर खास कर उनके चहरों के ध्यान करने की शिक्षाएँ अन्दर में ही उस वक़्त के प्रेमी भक्तों को अपने अपने चित्त और मन के चंचलता व मलीनतादि विकारों के दूर करने के वास्ते फरमाईं। पीछे जब उन सगुण अवतारी महात्मा पुरुषों को गुप्त हुए बहुत काल व्यतीत हो गया और समय की ह्रासता के साथ साथ जीवों के बल, बुद्धि व उमँग उत्साह और उद्योग व पुरुषार्थ में भी कमी होने लगी तो वही पूर्वोक्त सच्ची उपासना धातु पत्थर की बनी हुई नक़ली (राम, कृष्ण, शिव, गणेशादि नामधारी) जड़ मूर्त्तियों के मारफ़त बाहर ही करने का उपदेश उसी वक़्त के निरपेक्ष व निष्काम सच्चे विद्वान् पुरुषों ने किया। लेकिन फिर गिरते गिरते अब वह पहिली प्रतिमा-भक्ति भी इस क़दर इस वक़्त के लोभी लालची मन इन्द्रियों के गुलामों नें (पूर्वोक्त फ़ायदे को बालाये ताक रख के) ऐसी नीची गिरा दी है कि अब इन राम, कृष्ण, शिवादि की मूर्त्तियों की सेवा भक्ति भी सिर्फ़ एक अपने रोज़गार का वसीला ही समझ कर लोग अंगीकार कर बैठे हैं

और बजाय परमार्थी लाभ इनसे प्राप्त करने के मंदिरों में नाना-भाँति के तन मन इन्द्रिय पुष्टिक व उत्तेजक पदार्थों को बहुतायत से इकट्ठा करके और उनके भोग में लिप्त होके अपनी जीवात्मा का मज़बूत बंधन पैदा कर रहे हैं। जिन मन इन्द्रियों के विषय-भोगों से हमेशा व हर वक़्त दूर रहने की शिक्षाएँ उन अवतारी राम कृष्णादि महापुरुषों ने और पीछे के सच्चे विद्वान् ऋषि मुनियों ने अपने अपने ज़माने में निज प्रेमियों को बारम्बार फ़रमाई थीं उन्हीं को ये वर्तमानी मूर्त्ति-उपासक राम कृष्णादि की सेवा करने का नाम ले निज भक्ति का एक अंग ही समझ रहे हैं यानी नाना तरह के भोगों की चीजें बना बनाकर प्रतिमाओं के सामने रख आप भोगते हैं और इस कार्रवाई से जो मन के अंदर विकार पैदा होते हैं उनकी तरफ़ ध्यान न देकर ऐसा करना ही उन पिछले राम कृष्णादि की बड़ी भारी भक्ति-उपासना अपने मन में ख़्याल कर रहे हैं। जो कोई सच्चे साध, संत, महात्मा, योगीश्वर, निज दया से इन लोगों की चिरस्थाई ग़लतसमझौती दूर करने के वास्ते अपनी तरफ़ से पिछले सगुण अवतारी महापुरुषों की असलियत के यथार्थ बोध व ज्ञान देने वाले वचन इस तरह पर फ़रमाते हैं कि हे सगुणभक्तो! तुम हमारी बात कान देकर सुनो कि अपनी समझ मुताबिक़ पिछले रामादि अवतारों की सेवा भक्ति या उपासना यह जो तुम लोगों ने इन जड़ मूर्त्तियों द्वारा जारी (प्राचीन ऋषि मुनियों के वाक्य प्रमाणों के बल पर) कर रक्खी है वह यथार्थ नहीं है और न किसी ऋषि मुनि ने अपने वक़्त में (सगुण अवतारों की अविद्यमानता में)

ऐसा किया है और न तुम्हारे समान करतूत करने के लिये उन्होंने कोई वचन या श्लोक अपने किसी आध्यात्मिक शास्त्र में लिखा है। इस अभिप्राय के मुतल्लिक़ पीछे के पन्नों पर नज़र डालिये। उन्होंने और वर्तमानी सच्चे साध, संत, फ़क़ीरों ने तो सब किसी अधिकारी प्रेमी परमार्थी व मालिक के दर्शनाभिलाषी मोक्षार्थी जीवों के निज निज उद्धार व मालिक के दीदार के बाबत ऐसा कहा व लिखा है कि जैसे समुद्र से निकली व उठी हुई लहर किसी दरिया में ज्वार भाटे के तौर पर कोसों दूर चली जाती है और लौटते वक्त, ऊँच नीच जगह की कीचड़ में फँसी हुई जल की सारी बुंदों को अपने साथ में लेकर निज भंडाररूप समुद्र से ला मिलती है यानी एकमेक कर देती है। तैसे ही अपार दया मेहर व प्रेम के समुद्र इस नीचे की सृष्टि क सच्चे मालिक व परम पिता जो ब्रह्म व परब्रह्म हैं-उनके अंदर से बीच के सूक्ष्म व स्थूलमायिक परदों को चीर व फोड़कर लहर या किरण रूप से जो सगुणधार यहाँ आती है वह किसी पवित्र मनुष्य-चोलेरूप दरियाय की मारफ़त ही आती है-और दिन रात में कई दफ़े बल्कि हमेशा व हर वक्त, ही निज भंडार से अपना सूत जोड़े रखती है और लौटते वक्त, जीवरूप बुंदों को निज रूप व देश का भेद दे निहायत कष्टदार इस मायिक रचना की कीचड़ से निकाल भी वही ले जाती है-और निज भंडार रूप परमपिता से मिला हमेशा के लिये इन जीवरूप बुंदों को आवागमन के चक्कर से रहित व अलग कर देती है सो उक्त लहर या किरण ही यहाँ पर सच्चा सगुण अवतार कही जाती है-और वही यहाँ के

जीवों को इन कठिन बंधनों से सदा के लिए निकालने को परम समर्थ है। और किसी की ताक़त नहीं कि इस दुस्तर भवसागर से पार करे—इसलिये वह धार या लहर ही किसी नर-शरीर को ग्रहण कर अपने तन मन और वचन वाणी द्वारा ऐसी पवित्र क्रियाएँ या शिक्षाएँ जारी करती है कि उनको देख देख या सुन सुनकर बहुत से अधिकारी जीव उन सगुण अवतारों के अत्यंत प्रेमी भक्त बन जाते हैं और उनके पवित्र शरीर की निज शरीर से निहायत भाव भक्ति के साथ भक्ति व पूजा प्रतिष्ठा करते हैं। और उनके परम पवित्र मन से अपने मनको मिला यानी सब तरह से आज्ञाकारी सेवक बन निज हृदय को पवित्र व शुद्ध बनाते हैं। जब अंत समय आता है तब अवतरित महापुरुष उसकी जीवात्मा या सुरत रूपी बुंद को अपनी दया मेहर से यहाँ की तन, मन, इन्द्रिय सम्बन्धी सारी मलिन रचना रूपी कीचड़ से निहायत आसानी के साथ निकाल कर अपनी लहर या किरण रूपी सगुण धार की मारफ़त निज भंडार रूप परब्रह्म परमात्मा के साथ जा मिलाते यानी एक मेक हो जाते हैं या यों समझिये कि वह सत् चित आनन्द रूप सगुण धार ही सच्ची सगुण अवतार होकर यहाँ के मन माया काल कर्म की कीचड़ में फँसी हुई जीव-रूप बुन्द को अपने साथ मिलाकर निज परम पिता मालिक के साथ तद् रूप बना देती है और हमेशा को इस आवागमन के चक्कर से वह आत्माएँ निकल जाती हैं। इसी को सच्चा उद्धार या असली गति और सारे बन्धनों से छुटकारा कहते हैं। सो यह न्यामत भला ख़ास उस निर्गुण ब्रह्म से या व्यापक चेतन से

और या इन अवतारों के शरीर से जब किसी को नहीं हाथ आ सकती तब इन नक़ली और मनुष्यों के ही हाथों से .ख़ुद बनी हुई जड़ मूर्त्तियों से कैसे किसी को हासिल होने की आशा है ? इनसे उपरोक्त परम लाभों की आशा या उम्मेद बाँधना व रखना तो इनसे भी गये गुज़रे हुए जड़ और निहायत मूर्खों का ही काम है। जिसे ज़रा भी मालिक की बख़्शी हुई यथार्थ बुद्धि या सुमति है वह कदापि ऐसा न करेगा और न दूसरों को ऐसी ओछी कार्रवाई करने के लिये सलाह ही देगा। पीछे जैसे बयान किया है तैसे सनातन धर्म की रू से चाहे इन मूर्त्तियों के मार-फ़त किसी निकृष्ट अधिकारी को आध्यात्मिक रास्ते में (अपने चंचल चित्त निरोधार्थ) कुछ फ़ायदा हासिल हो परन्तु उपरोक्त परम फ़ायदे की आशा इन मूर्तियों से सच्चा विवेक वाला यथार्थी पुरुष अपने दिल में कभी क़ायम नहीं कर सकता। इसके लिये तो वह सच्चा जिज्ञासु बनकर वक़्त के किसी सच्चे सगुण अवतारी साध संत व फ़क़ीर महात्मा या योगीश्वर का दरवाज़ा ही खट खटायेगा यानी उनसे ही अपनी इच्छा व मुराद पूरी होने की सच्ची आशा बाँधेगा। लेकिन वर्तमानकाल में अगर कोई सच्चे संत सद्गुरु या फ़क़ीर, महात्मा इन वर्तमानी मूर्ति-पूजक सगुण भक्तों को जब पूर्वोक्त रीति से समझाते और वक़्त के किसी सच्चे सगुण अवतार की शरण इख़्तियार करने की हितकारी शिक्षा देते हैं तो यह लोग उन महापुरुषों से और उनकी निहायत सच्ची हितकारी उपरोक्त शिक्षा से अन्दर बाहर में सख़्त नाराज़ होते हैं। ये उनके सदुपदेश में से कोई लाभदायक

बात अंगीकार करें यह तो दरकिनार उलटा उन्हें अन्य मतावलम्बी ठहरा के पिछले अवतारों व मूर्तियों और सनातनधर्म का द्वेषी तथा खंडन करने वाला निंदक कहते हैं। और अपनी सी ही समझ व करतूत वालों के आगे (इन महापुरुषों के मुतल्लिक़) ऐसी ऐसी निज तरफ़ से सोच सोच के परिवादक यानी अनहोनी बातें अपमानजनक उड़ाते हैं कि जिससे सच्चे महात्मा पुरुष बदनाम हों। और हमारी न्याईं अन्य लोग भी इनसे घृणा करें और इनकी शिक्षा को न सुनें समझें। इस तरह से अभागी बनकर ये वर्त्तमानी सगुण भक्त अपने सिर निंदा का भारी भार लादते हैं। जिससे ख़ुद पिछले अवतारी महापुरुषों की या ऋषि मुनियों की और वक्त के सच्चे साध संत कामिल फ़क़ीरों की अपने अपने ग्रन्थ शास्त्रों में लिखी हुई या फ़रमाई हुईं असली शिक्षाओं से महरूम रहते हुए चौरासी में चले जाते हैं। इसका फल यह होता है कि न सच्चे अवतारों ही का दर्शन इन लोगों को मिलता है और न सच्चा कल्याण ही इन्हें हासिल होता है। अंत में मृत्यु को प्राप्त होकर अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ऊंचे नीचे देशों व दर्जों को ऊंच नीच योनियों में ये लोग हमेशा जन्म धारण करते रहते हैं। यानी किसी प्रकार भी आवागमन वाले चक्र से इनका छुटकारा व निकलना नहीं होता है।

प्रार्थना

अब अंत में मालिक से प्रार्थना है कि हे प्रभो ! अगर जो तुमने अपने इस अबोध बालक से तोतली जबान में इसकी तुच्छ बुद्धि से यह अवतार-बोध ग्रंथ लिखवाया है तो इस कंगले की दरिद्रता पर ध्यान न देते हुए अपनी अतीव दया मेहर से अब इसे अपने बच्चों की सेवा के ख़ातिर आम जीवों में छपवाकर भी प्रकाशित कीजिये और पढ़ने सुनने वालों को निज कृपा दृष्टि के चमत्कारों से अपने निज पुत्र स्वरूप सच्चे सगुण अवतारों के मुतल्लिक़ भ्रम संदेह दूर करा कर हमेशा के लिये अपने चरण कमलों की सच्ची सेवा भक्ति और उपासना में लगाइये। अख़ीर में हँसते खेलते हुए सब जीवों को निज गोद में बैठाल कर आध्यात्मिक त्रिय ताप वाले इस संसार से निकाल कर हमेशा को अपने सच्चिदानन्द परम प्रेम स्वरूप के दर्शनों का परमानंन्द दे उसी में मग्न कीजिये।

बाद को सब अध्ययनकर्त्ताओं व श्रोतागणों से सविनय निवेदन है कि इस ग्रंथ की ग़लतियों पर आप ऐसे ही ध्यान न दीजिये जैसे भारी विद्वान् पंडित अपने घर के छोटे बच्चों की तोतली भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों पर ध्यान नहीं देते बल्कि उस बालक के हृदय के भाव को देखकर बड़े प्रेम से सुनते हैं।

मुझे आशा है कि जो प्रेमी पाठक इस बालक के हृदय के भाव को पढ़ेंगे, सुनेंगे और इसमें से मुफ़ीद नतीजा

निकालकर यानी वक्त के सच्चे साध संतों की शरण ग्रहण करके इस ग़रीब दास के परिश्रम को सफल करेंगे तो उनके निजात्मा को मालिक अपनी दया से त्रय तापों की तपनि से सदा के वास्ते बचाकर शांति प्रदान करेगा और हमेशा परमानन्द में वह मग्न रहेंगे यह मेरी भी उनके हक़ में मालिक से प्रार्थना है।

साखी

तुम प्रभु दीन दयाल हो, सब भक्तन के प्रतिपाल।
इस दास गरीबा बाल की, रखो हरदम सदा सम्हाल॥१॥
हे प्रीतम प्यारे साइँयाँ, देउ प्रेम प्रीति की दात।
मन माया काल औ कर्मके, सब दूर होय उत्पात॥२॥
जो प्रेम प्रीति की दृष्टि से, इसे पढ़ें सुनेंगे यार।
तें गुरु मालिक की भक्ति को, पाय पहुँचे धुर दरबार॥३॥

इति।

शुद्ध अशुद्ध पत्र

भूमिका

पृ०	पं०	शु०	अशुद्धि
४	१	प्रेमाभक्ति	प्रमाभक्ति
१०	७	मामूली	मामूला

अवतार-बोध

पृ०	पं०	शु०	अशुद्ध
१३	१६	(सीय स्वयंवर देखने के लिये)	
३५	२	किसी	।कसी
३६	३	कड़ी	कड़ा
३७	२०	को	के
४२	२१	को	का
४६	२२	का	का
५२	११	लोग	लाग
५२	१६	अवतारों	अवतारा
५३	५	अवगुणीयन	अवगुणपन
५७	२	नरलीला	नरलाला
६५	१६	भवेत्	भवोत
६८	४	कोही	ठीकठीकही
७२	१७	ही	हा
७४	५	इत्यादि रूपसे	०
७७	१३	०	का
७८	२	प्राकृत	प्राकृति
७८	१४	बो	व
७६	२३	प्रविसेउ	अविसेव

पृ०	पं०	शु०	अशुद्धि
८०	८	लेही	लेहो
८२	१७	तवी	तब
८२	१६	०	ही
८८	६	मात्मा	मात्म
८६	२३	पिता ब्रह्माजी	०
६०	१	ती	ता
६१	२	अपना	०
६३	५	घरसे	घर
६६	१८	०	से०
१०१	७	यह	यही
१०६	७	जो	जा
१११	१३	को	का
११२	८	तो	ता
११४	१०	चेहरे	चहरे
११४	११	चेहरे	चहरे
११५	४	सेवा	सवा
११७	८	उनकी	उनको
११८	२	से	स
११८	१५	पीछे	पाछे
१२४	१६	को	के
१२७	६	वृथा	वृथ
१३०	११	०	पहले
१४०	६	दीदार	दादार
१४०	१२	के	क

पुस्तक मिलने का पता:—

(१) परमहंस बाबा प्रीतमदास जी की

मौजा गोपालपुरा, डाकखाना होलीपुरा

जिला आगरा।

(२) प्रेमीभाई बालकृष्ण जी दयालबाग